जिसे आर्य समाज के कई प्रसिद्ध
विद्वानो ने मिलकर आर्य भाइयों के
हित के लिए रचा

प्रकाशक—
शहीदे-धर्म महाशय राजपा...
सन्ज़, आर्य पुस्तकालय
आश्रम, अनारकली

आज तक भक्ति दर्पण का यह सुन्दर गुटका ६८ सहस्र से ऊपर छप चुका है—

१८वीं बार—१६४१—मूल्य । ।।।=)
आर्य-सम्वत १६७२६४६०४१
विक्रमी १६६७-६८
दयानन्दाब्द ११६-१७

—एस० सी० लखनपाल प्रिंटर
मेश प्रिंटिंग वर्कस लाहौर ने
विश्वनाथ बी. ए.
कालय, अनारकली लाहौर
लिए छापी।
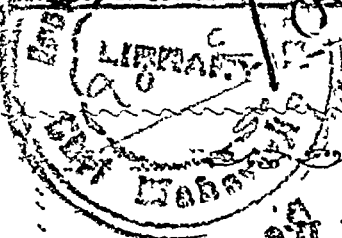
श्री महावीर
दि० जैन ...
उपहार

॥ कृण्वन्तो विश्वमार्य्यम् ॥

आर्य हमारा नाम है।
सत्य हमारा कर्म्म ॥
ओ३म् हमारा देव है।
वेद हमारा धर्म्म ॥

"प्रत्येक को अपनी ही उन्नति मे सन्तुष्ट न रहना चाहिये, किन्तु सब की उन्नति मे अपनी उन्नति समझनी चाहिये"

—दयानन्द

दो शब्द

चिरकाल से मैं इस आवश्यक्ता का अनुभव कर रहा था कि कोई ऐसी पुस्तक रची जाय, जो वैदिक धर्म में नए प्रविष्ट होने वाले मनुष्यों (स्त्री अथवा पुरुषों) को आत्म-प्रसाद के रूप में दी जाय। जिसके द्वारा सर्वसाधारण को ज्ञात हो कि इस महान् ईश्वरीय दुर्लभ मनुष्य-जीवन को सफल बनाने के लिये मनुष्य के क्या क्या कर्तव्य हैं? मैने अपने मित्र (स्व०) पं० बृहस्पतिजी आर्योपदेशक के सामने इस आवश्यक्ता को प्रकट किया। वह मुझ से सहमत हुए और उन्होंने मेरे साथ मिल कर इस उपयोगी पुस्तक को पूर्ण किया। पाठकों को यह हर्ष-सम्वाद सुनाते हुए मेरा हृदय प्रफुल्लित होता है कि

इस छोटी-सी, परन्तु अति उपयोगी पुस्तक को आर्य्यसमाज के रत्नों तथा जनता ने इतना अपनाया है, कि थोड़े ही समय मे इसके ११ *संस्करण निकल गये। इस पुस्तक को अधिक उपयोगी बनाने मे मुझे आर्यसमाज के प्रसिद्ध विद्वान प० भगवद्दत्त जी बी० ए० प० परमानन्द जी बी ए, पं० चमूपति जी एम० ए०, तथा म० मदनजीत जी आदि प्रसिद्ध विद्वानों ने जो सहायता दी है, उसके लिये मै उनको हार्दिक धन्यवाद देता हू।

अब यह पुस्तक इतनी उपयोगी हो गई है कि साधारण मनुष्य भी इसको पढ कर वैदिक धर्म का अनुयायी हुए बिना नहीं रह सकता।

---

*यह १८वा संस्करण है।

दो शब्द

आशा है कि आर्य समाजें तथा अन्य सस्थाएं उदार चित्त से इस पुस्तक का प्रचार करेंगी, और प्रत्येक नए प्रविष्ट होने वाले सदस्य (मेम्बर) को इसकी एक प्रति आत्म-प्रसाद के रूप मे देंगी।

सरस्वती-आश्रम
लाहौर
२५. ६. १६२८

विनीत—
(शहीद) राजपाल

वक्तव्य

भक्ति दर्पण का १८ वां संस्करण पाठकों के हाथ मे है। इसमें कई अन्य उपयोगी विषयों का समावेश किया गया है। इस बार अशुद्धियों की ओर विशेष ध्यान रखा गया है। जिन महानुभावों ने हमें त्रुटियां बताई हैं उनके हम आभारी है। भक्ति-दर्पण की उपयोगिता किसी से छिपी हुई नहीं क्योंकि उसका सभी नर-नारी-वर्ग ने स्वागत किया है। —प्रबन्धक

विषय-सूची

विषय-सूची

भजन-सूची

विषय-प्रवेश

भक्ति-मार्ग के यात्रियों, आर्य्य-समाज अथवा उसके साथ संबन्ध रखने वाली अन्य संस्थाओं (आर्य-कुमार-सभा इत्यादि) के सभासदों, स्त्री-पुरुषों तथा पाठशालाओं के विद्यार्थियों के

लिये धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूपी परम कल्याण की प्राप्ति के लिये जिन बातों का जानना वा स्मरण करना अत्यन्त आवश्यक है, उनका यहां संक्षिप्त रीति से उल्लेख किया जाता है । विस्तृत वर्णन अगले पृष्ठों मे किया जावेगा—

(१) आर्य्य-समाज और उसके साथ सम्बन्ध रखने वाली संस्थाओं मे प्रवेश करने वाले प्रत्येक सभासद् का कर्त्तव्य है कि वह आर्य्य-समाज के नियमों को कण्ठस्थ कर ले ।

(२) प्रत्येक सभासद् को उसके नित्य कर्म्मों का स्मरण होना चाहिये और वह अपना ऐसा समय-विभाग बनावे, कि जिस से यथासम्भव नित्य कर्मों मे अनध्याय न हो सके ।

आर्यसमाज के प्रवर्तक

श्री स्वामी दयानन्द जी महाराज
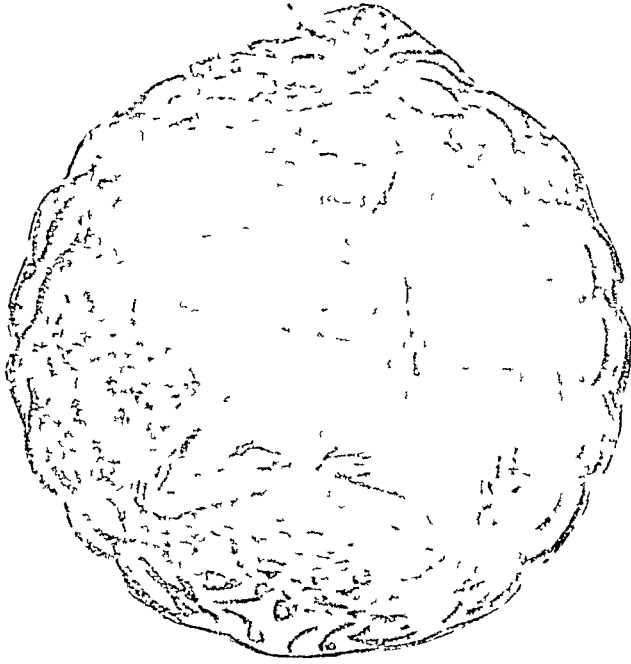
आर्यगुरु विरजानन्द जी

(३) आर्य्य-समाज के विचारात्मक (इरादी) और क्रियात्मक (अमली) सिद्धान्तों का बोध प्रत्येक सभासद् को होना चाहिये। उनका विस्तृत वर्णन सत्यार्थप्रकाश में किया गया है, परन्तु संक्षिप्त रीति से यह सिद्धान्त आगले पृष्टों मे वर्णन किये गये है।

(४) यदि प्रत्येक सभासद् वेदों और शास्त्रों को पढ़ नही सकता, तो न्यून से न्यून उसे यह तो ज्ञात होना चाहिये कि वेद कितने है, दर्शन कितने है, उपनिषदे कितनी हैं, वेदों के अंग तथा उपांग कौन-कौन से है। संक्षिप्त रीति से वैदिक धर्म सम्बन्धी साहित्य का चित्र भी अन्यत्र दिया गया है।

(५) प्रत्येक सभासद् को यत्न करना

चाहिये, कि वह आर्य्यसमाज के प्रवर्तक महर्षि दयानन्द और आर्यसमाज के अन्य प्रमुख सन्यासियों और महात्माओं के ग्रन्थों को आर्यभाषा मे पढ़ सके। इन ग्रन्थों को समझने के लिये यह आवश्यक है कि वे आर्य-भाषा मे पढ़े जायें। आर्य भाषा अधिक से अधिक एक सप्ताह मे सीखी जा सकती है। यदि प्रत्येक भाई बहिन के पास इतना समय नही कि ऋषि ग्रन्थों को पढ़ सके, तो न्यून-से-न्यून उसे यह तो अवश्य ज्ञात होना चाहिये कि उन्होंने हमारे हित के लिये कौन-कौन से ग्रन्थ किस-किस विषय पर रचे है। उन ग्रन्थों के नाम और विषय भी अगले पृष्ठों मे दिये गये हैं।

(६) प्रत्येक आर्य सभासद् को अपने और अपनी सन्तान के जीवन का

समय-विभाग प्रति समय स्मरण रखना चाहिये अर्थात् उसे ज्ञात होना चाहिये कि किस आयु मे उसे क्या काम करना उचित है । आर्यों के जीवन का कार्यक्रम विस्तृत रीति से महर्षि दयानन्द ने संस्कार-विधि मे सोलह संस्कारों के रूप मे दिया है । इस पुस्तक मे उन संस्कारों के लाभ, नाम और उन का समय दिया गया है, और साथ ही आर्यों के त्योहारों, यज्ञों और पर्वों का भी उल्लेख किया गया है । इस के अतिरिक्त आर्यों के सामाजिक धर्म, नियम भी लिखे गये है ।

(७) प्रत्येक सभासद् को सन्ध्या और हवन नित्य प्रति करना चाहिये । नित्य-कर्मों मे अनध्याय किसी अवस्था में भी नही होना चाहिये । इस पुस्तक मे

प्रार्थना-मन्त्र, सन्ध्या और हवनमन्त्र अर्थ सहित दिये गये हैं।

(८) प्रत्येक सभासद् को प्रार्थना और उपासना के कुछ मन्त्र भी कण्ठस्थ होने चाहिये, जिन को सन्ध्या तथा अग्निहोत्र के पश्चात् पढकर, परमात्मा से पापों की निवृत्ति और सुखों की प्राप्ति के लिये प्रार्थना की जावे।

(९) कुछ प्रार्थनायें और ईश्वर-भक्ति के भजन भी स्मरण होने चाहियें जिससे कि अपनी सभा मे किसी उपदेशक के अभाव की अवस्था मे, कोई कठिनता प्रतीत न हो, और प्रत्येक सभासद् प्रार्थना-उपासना तथा ईश्वर का भजन कराने के लिये भी उद्यत हो सके।

(१०) जिस महान् आत्मा ने हमे इस

योग्य बनाया कि हम शारीरिक, आ-
त्मिक तथा सामाजिक उन्नति और
अपने धर्म-ग्रन्थों का स्वाध्याय कर
सकें, उस के विषय में यदि
आर्यसमाज के किसी सभासद् को
कुछ बोध न हो यह बड़ी कृतघ्नता होगी।
इस लिये पुस्तक के अन्त मे दो-चार बातें
उनके पवित्र चरित्र के सम्बन्ध मे भी
दे दी गई हैं जिन्होंने सारे संसार मे
आर्यजाति का मस्तक ऊंचा किया
है। यदि धर्म के प्रेमी इस 'भक्ति-दर्पण'
का श्रद्धा और प्रेम से पाठ करेगे तो
प्रतिदिन उनका जीवन उन्नत और
हृदय विशाल होता जायगा, तथा धर्म
मे उनकी श्रद्धा और भक्ति बढ़ती जायगी।
अब उपरोक्त सब बातों का उल्लेख
किया जाता है।

आर्यों के नित्य कर्म

ऋषि दयानन्द का कथन है कि 'आर्य' नाम विद्वान्, धार्मिक और आप्त पुरुष का है। अतः आर्यों के नित्य-कर्म ऐसे ही होने चाहिये जो धार्मिक, आप्त पुरुषों के योग्य हों।

प्रातःकाल जागने के समय से ही नित्य-कर्मों का आरम्भ हो जाता है। मनु भगवान् (४-९२ में) कहते हैं:—

ब्राह्मे मुहूर्त्ते बुध्येत,
धर्मार्थौ चानुचिन्तयेत्।
कायक्लेशांश्च तन्मूलान्,
वेदतत्त्वार्थमेव च ॥

ब्राह्म-मुहूर्त अर्थात् चार घड़ी रात

रहे उठ कर मनुष्य धर्म और अर्थों का चिन्तन करे, तथा उन शारीरिक कष्टों का भी विचार करे, जो धर्म और अर्थ की प्राप्ति में विघ्न करने वाले हैं। वेद के तत्त्वार्थ का भी विचार करे, क्योंकि उस समय बुद्धि स्वच्छ और चित्त प्रसन्न होता है। परन्तु यह तब ही हो सकता है, जब गृहस्थी लोग रात्रि के ९ अथवा १० बजे तक सो जाया करें, क्योंकि स्वास्थ्य के लिये ७ घण्टे शयन करना आवश्यक है। सोने के पूर्व हाथ-मुंह धोवें। चारपाई पर लेटने के पश्चात् यदि तत्काल ही नींद न आवे, तो दो अथवा तीन बार प्राणायाम करके प्रणव (ओ३म्) का जप करें, निद्रा आ जावेगी। जिस समय नींद खुले, उसी समय उठ कर

बैठ जावें और प्रार्थना के वह मन्त्र ऊंचे स्वर में पढे जो इस पुस्तक में "ब्राह्म मुहूर्त मे पढने योग्य मन्त्र" के नाम से दिये गये हैं। फिर धर्म का चिन्तन करने के पश्चात् उस दिन के करने योग्य कामों का विचार करें। माता-पिता के चरण छुएं, उनको स्नानादि कराये। स्त्रिया चक्की पीसें अथवा दही बिलोवें [स्मरण रक्खो 'जिस घर चाटी, चरखा चक्की, उसकी सारी बाते पक्की' (सं०)] धर्म का चिन्तन करने के पश्चात शौचादि से निवृत्त होकर अपनी धर्मपत्नी सहित वायु-सेवन के लिये बाहर जावें। लौट कर कुछ व्यायाम करें, पश्चात स्नान कर सारा परिवार मिलकर सन्ध्या, अग्निहोत्र तथा भजन-गान करें। तत्पश्चात सब नर-नारी

अलग-अलग स्वाध्याय में लग जावें। वृद्ध, युवा, बालक, स्त्री, पुरुष सबको ही प्रतिदिन स्वाध्याय करना चाहिये। शास्त्रों का कथन है कि वृद्ध अवस्था से पूर्व प्रतिदिन मनुष्यों को धर्म का अभ्यास करना चाहिये। धर्म के मर्म को जानने के लिये स्वाध्याय से बढ़कर कोई साधन नहीं है। स्वाध्याय के लिये वैदिक-आर्ष ग्रन्थ सब से उत्तम हैं। वेदों और शास्त्रों तक पहुंचने का यह एकमात्र साधन है। यदि आलस्य त्याग कर काम करने का स्वभाव हो तो यह सारे काम प्रातः ७ बजे तक समाप्त हो सकते हैं।

इससे निवृत्त होकर सब परिवार यथा-सामर्थ्य दुग्धपान अथवा कोई और प्रातराश (कलेवा) करे। फिर अपने-अपने

काम मे लग जावे। परन्तु यह बात ध्यान मे रखनी चाहिये कि कोई काम धर्म विरुद्ध न हो। भोजन का समय दस-ग्यारह बजे के मध्य होना चाहिये अथवा जैसी अपनी अवस्था हो। भोजन का आटा मोटा, अनछना, चक्की, ख़रास वा घराट का हो, यन्त्र (मशीन) का कदापि न हो। पीने के लिये दूध विशुद्ध होना चाहिये, परन्तु इसके लिये आवश्यक है कि प्रत्येक आर्य के घर मे एक-एक गाय हो। इससे जहां दूध विशुद्ध (खालिस) मिलेगा वहाँ गोरक्षा भी होगी। भोजन से पूर्व पितृयज्ञ और बलिवैश्वदेव-यज्ञ करके अर्थात् चूल्हे से अग्नि निकाल उसमे आहुतियां डालने के पश्चात् कुत्ते, काक और पतित आदि के लिये भोजन का कुछ भाग पृथक् रक्खे।

यदि कोई अतिथि आ जावे तो सबसे पूर्व उसको भोजन करावें। नौकरों को भी पहिले भोजन कराना चाहिये, फिर आप परिवार-सहित भोजन करें। भोजन चबाकर खाना चाहिये। हलका-सा भोजन तीसरे पहर को भी होना चाहिये। जिसमे यथासामर्थ्य गव्य दुग्ध अथवा फल [केला, सेव, गाजर आदि] हों। रात्रि का भोजन सन्ध्या के सात वा आठ बजे तक होना चाहिये। जिस गृह में सायं-प्रातः हवन से वायु की शुद्धि का उपदेश दिया गया हो उस गृह में हुक्के की दुर्गन्ध नहीं फैलनी चाहिये। वस्त्र सदा स्वच्छ, स्वदेशी और घर वायु-युक्त होना चाहिये। दिन-भर काम कर चुकने के पश्चात् सायं समय फिर सन्ध्या अग्निहोत्र की तत्परता (तैयारी) करनी

चाहिये। सायंकाल का अग्निहोत्र और भोजन भी परिवार-सहित होना चाहिये। इससे परिवार मे प्रेम बढ़ता है। ऐसे समय कभी-कभी आर्य-परिवारों को निमन्त्रण देकर पारिवारिक सत्संग करने चाहिये। सन्तानों मे सदाचार और धर्म के संचार का यह बहुत अच्छा साधन है।

सोने से पूर्व गृहपति को चाहिये कि बच्चों को हाथ-मुंह धुलाकर उनसे ईश्वर-प्रार्थना के मन्त्रों का उच्चारण करावे। आर्य-सन्तानों को शिक्षा दी जावे कि वह सोने से पहले घर के सब बड़ों को श्रद्धा पूर्वक नमस्ते करे। सबसे पीछे माता के पाव छू कर नमस्ते कहे। माता आशीर्वाद दे कर उनको सुला देवे। अविवाहित लडकों वा लडकियों को सदैव कठोर लकड़ी के तख्त पर

सुलावें, इस से वीर्य-रक्षा मे बड़ी सहायता मिलती है।

बिछौना भी स्वच्छ होना चाहिये। चादर बदलते रहना चाहिये। बिस्तर भी प्रतिदिन धूप मे सुखाना चाहिये। रजाई मे मुंह ढांप कर कभी मत सोवें, इस से स्वास्थ्य की बहुत हानि होती है। झरोखे (रोशनदान) खुले रहने दें। फिर देखे प्रातः काल सारा परिवार कैसा आलस्यहीन जागता है। इन कर्मों से दीर्घ आयु, उत्तम सन्तान तथा धन की प्राप्ति होती है।

आर्यों का समय-विभाग

शीत-ऋतु— प्रातःकाल ५ से ५॥ बजे तक धर्म, अर्थ और काम का चिन्तन, प्रार्थना-मन्त्रों का उच्चारण और शौच-५॥ से ६॥ बजे तक वायु सेवन व्यायाम और स्नान।

६॥ से ७॥ बजे तक अग्निहोत्र, सन्ध्या और भजन इत्यादि।

७॥ से ८॥ बजे तक स्वाध्याय आदि। यदि समय अधिक मिल सके तो स्वाध्याय अधिक करना चाहिये, परन्तु आध घण्टा से न्यून समय तो किसी अवस्था मे नही देना चाहिये। इसके पश्चात् गव्य-दुग्ध पान करके घर के आवश्यक (जरूरी) काम कर लें। फिर

अपने-अपने काम पर दफ़तर अथवा दुकान आदि पर चले जावें। पत्र-व्यवहार और व्यापार आदि आर्यभाषा में ही करें, सारा दिन धर्म-पूर्वक काम करें।

सायंकाल को ६ बजे से ७ बजे तक सन्ध्या, अग्निहोत्र और भजन आदि।

७ से १० बजे तक खान-पान और परिवार-सम्बन्धी आवश्यक काम।

ग्रीष्म-ऋतु में—प्रातःकाल ४ से ४॥ बजे तक धर्म और अर्थ का चिन्तन और प्रार्थना-मन्त्रों का उच्चारण तथा शौच। ४॥ से ५॥ बजे तक वायु-सेवन, व्यायाम और स्नान।

५॥ से ६॥ बजे तक सन्ध्या, अग्निहोत्र और भोजनादि।

६॥ से ७ बजे तक स्वाध्याय, फिर थोड़ासा गव्य दुग्ध वा लस्सी पी कर यदि

घर का कोई काम हो तो वह कर लें, नही तो अपने काम पर चले जाये।

११ से १२ बजे तक भोजन करें, फिर अपने काम मे लग जायें।

ब्राह्म मुहूर्त में पढ़ने योग्य मन्त्र

प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं हवामहे,
प्रातर्मित्रावरुणा प्रातरश्विना।
प्रातर्भगं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं,
प्रातस्सोममुत रुद्रं हुवेम ॥ १ ॥

अर्थ—हे स्त्री पुरुषो ! जैसे हम विद्वान् उपदेशक लोग प्रभात-समय मे स्वप्रकाश-स्वरूप, परमैश्वर्य के दाता और परमैश्वर्य-युक्त प्राण, उदान के समान प्रिय और

सर्वशक्तिमान्, सूर्य-चन्द्र को जिसने उत्पन्न किया है, उस परमात्मा की स्तुति करते हैं और भजनीय, सेवनीय, ऐश्वर्य-युक्त, पुष्टिकर्त्ता, अपने उपासक, वेद और ब्रह्माण्ड के पालन करने हारे, अन्तर्यामी, प्रेरक, और पापियों को रुलानेहारे और सर्वरोगनाशक जगदीश्वर की स्तुति प्रार्थना करते है, तुम लोग भी किया करो ॥१॥

प्रातर्जितं भगमुग्रं हुवेम,
वयं पुत्रमदितेर्यो विधर्ता ।
आध्रश्चिद्यं मन्यमानस्तुरश्चिद्,
राजा चिद्यं भगं भक्षीत्याह ॥२॥

प्रातः पांच घड़ी रात्रि रहे जयशील,

ऐश्वर्य के दाता, तेजस्वी, अन्तरिक्षस्थ, सूर्य की उत्पत्ति करने हारे और जो कि सूर्यादि लोकों का विशेष करके धारण कर्त्ता, सब का जानने हारा, दुष्टों का भी दण्डदाता और सब का प्रकाश है, जिस भजनीय स्वरूप को इस प्रकार सेवन करता हूँ, इसी प्रकार भगवान् परमेश्वर सब को उपदेश करता है कि "जो मै सूर्यादि जगत् को बनाने और धारण करने हारा हूँ, उस मेरी आज्ञा मे तुम चला करो।"

भग प्रणेतर्भग सत्यराधो
भगेमां धियमुदवा ददन्नः।
भग प्र णो जनय गोभिरश्वैर्,

भग प्र नृभिर्नृवन्तः स्याम ॥३॥

हे भजनीय स्वरूप ! सब के उत्पादक, सत्याचार मे प्रेरक, ऐश्वर्यदाता ! हमे प्रज्ञा दीजिये और उनके दान पर हमारी रक्षा कीजिये आप गाय, घोड़े आदि उत्तम पशुओं के योग से राज्य-श्री को हमारे लिये प्रकट कीजिये। आप की कृपा से हम लोग उत्तम मनुष्यों के सहयोग से बहुत वीर मनुष्यों वाले होवें ॥३॥

उतेदानीं भगवन्तः स्यामोत,

प्र पित्वा उत मध्ये अह्नाम् ।

उतोदिता मघवन्त्सूर्यस्य,

वयं देवानां सुमतौ स्याम ॥४॥

हे भगवन्! आपकी कृपा और अपने पुरुषार्थ से हम लोग इस समय प्रकर्षता तथा उत्तमता की प्राप्ति मे और इन दिनों के मध्य मे ऐश्वर्ययुक्त और शक्तिमान् होवे। और हे परम पूजित! असंख्य धन देने हारे! सूर्य लोक के उदय मे पूर्ण विद्वान् धार्मिक आप लोगों की अच्छी उत्तम प्रज्ञा और सुमति मे हम लोग सदा प्रवृत्त रहे ॥४॥

भग एव भगवाँ अस्तु देवास्,
तेन वयं भगवन्तः स्याम ।
तं त्वा भग सर्व इज्जोहवीति,

स नो भग पुरएता भवेह ॥५॥

ऋ० । मं० ७ । सू० ४१ । मं० १-५

हे सकलैश्वर्यसम्पन्न जगदीश्वर ! जिससे आप की सब सज्जन निश्चय करके प्रशंसा करते है वह आप, हे ऐश्वर्यप्रद ! इस संसार और हमारे गृहस्थाश्रम में अग्रगामी, और आगे-आगे सत्य कर्मों मे बढ़ाने हारे हूजिये और जिससे सम्पूर्ण ऐश्वर्ययुक्त और समस्त ऐश्वर्य के दाता होने से आप ही हमारे पूजनीय देव होवें, इसी हेतु से हम विद्वान् लोग

नोट—आदर्श वैदिक जीवन बनाने के लिए अमर शहीद स्वामी श्रद्धानन्द जी की लिखी पुस्तक "आर्य्यों के नित्य कर्म्म" अवश्य पढे। मूल्य तीन आना

सकलैश्वर्यसम्पन्न होके सब संसार के उपकार मे तन, मन, धन से प्रवृत्त होवे ॥५॥

भोजन के समय पढ़ने योग्य मन्त्र

ओं अन्नपतेऽन्नस्य नो देह्य-
नमीवस्य शुष्मिणः ।
प्र प्र दातारं तारिष,
ऊर्जन्नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे ।

यजु० । ११ । ८३

"हे अन्नपते परमात्मन् ! इस संसार के प्राणी आपका दिया हुआ अन्न खाते हैं । परमात्मन् ! हम स्वास्थ्य-वर्धक, रोगो के कीटाणुओं से रहित शुद्ध बल-वर्धक अन्न का सेवन करें । अन्न-दान करने वाले मनुष्यों को दुःखों से पार

कर, दो पैर वाले और चार पैर वाले प्राणिमात्र के लिये आपका दिया हुआ अन्न कल्याणकारी हो।" परमात्मा का स्मरण करके ही भोजन करना चाहिये। ऐसा अन्न ही मनुष्यमात्र में आर्य भाव उत्पन्न करता है। धर्म के मुख्य साधन शरीर की उन्नति के लिये बुद्धि-पूर्वक तथा संयम-पूर्वक भोजन करना चाहिये।

सायं ६॥ से ७॥ बजे तक अग्निहोत्रादि।

७॥ से ९ बजे तक भोजन आदि।

९ बजे सारा परिवार सो जाये। सोने से पूर्व सारा परिवार मिल कर इन आगे दिये मन्त्रों का पाठ करे।

सोते समय पढ़ने योग्य मन्त्र

यजुर्वेद का शिव-सङ्कल्प-सूक्त।

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं,
तदु सुप्तस्य तथैवैति ।
दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं,
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥१॥

य० अ० ३४ । १ ॥

अर्थ—जो दिव्य गुणों वाला मन जागते तथा सोते समय दूर-दूर चला जाता है जो दूर जाने वाला, ज्योतियों का प्रकाशक ज्योति है, वह मेरा मन अच्छे विचारों वाला होवे ॥१॥

येन कर्माण्यपसो मनीषिणो,
यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः ।
यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां,

तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥२॥
य० । अ० ३४ । २ ॥

अर्थ—जिस मन के द्वारा मनन-शील मनुष्य यज्ञ आदि मे वैदिक तथा अन्य कर्तव्य-कर्म करते हैं, तथा युद्धों के अन्दर धीर और गम्भीर नेता लोग विचार-विमर्श (सलाह-मशवरे) करते हैं, जो अपूर्व शक्तिवाला, पूजनीय, लोगों के अन्तःकरण मे है, वह मेरा मन अच्छे संकल्प वाला हो ॥२॥

यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च,
यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु ।
यस्मान्न ऋते किंचन कर्म क्रियते,
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥३॥
य० । अ० ३४ । ३॥

अर्थ—जिस मन के अन्दर ज्ञानशक्ति, चिन्तन-शक्ति, धैर्य-शक्ति रहती है, जो मन प्रजाओं मे अमृतमय और तेजोमय है। जो इतना शक्ति-शाली है कि इसके विना मनुष्य कोई भी कर्म नहीं कर सकता —सब कर्म इसी की सहायता से किये जाते हैं—वह मेरा मन शुभ संकल्प वाला होवे ॥३॥

येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्,
परिगृहीतममृतेन सर्वम् ।
येन यज्ञस्तायते सप्त होता,
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥४॥

य० अ० । ३४ । ४॥

अर्थ—भूत, भविष्यत् और वर्तमान काल मे जो कुछ होता है, वह सब इसी मन-द्वारा ग्रहण किया जाता है। पाच

ज्ञानेद्रियां और अहङ्कार तथा बुद्धि + द्वारा जो यह जीवन-यज्ञ चल रहा है, इस का तथा मन, बुद्धि, कार्य्यकारी इन्द्रियों का अधिष्ठाता है। यह मेरा मन सदा शुभ संकल्प वाला बने और कदापि अशुभ संकल्प न करे ॥४

यस्मिन्नृचः साम यजूꣳषियस्मिन्
प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः।
यस्मिंश्चित्तꣳ सर्वमोतं प्रजानां,
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥५॥

य०। अ० ३४। ५॥

अर्थ--जिस मन में सम्पूर्ण वेद और सब शास्त्र तथा अन्य सब ज्ञान ओत-प्रोत (भरा) रहता है, जिस मन की शक्ति ऐसी

+नोट--सप्त होता = १-५ ज्ञानेन्द्रियां, ६ अहंकार ७ बुद्धि

है कि जिसमें यह सब ज्ञान रह सके, सब बुद्धिमान् लोग इसी से मनन करते हैं। वह शक्तिशाली मेरा मन सदा शुभ विचार से युक्त हो।

सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्,
नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिन इव।
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं,
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥६॥

य० । अ० ३४ । ॥ ६ ॥

अर्थ—जैसे अच्छा सारथि घोड़ों को लगाम लगाकर नियम में रखता है उसी प्रकार वश में हुआ-हुआ यह मन मनुष्यों को अभीष्ट स्थान पर ले जाता है। जो मन हृदयस्थ है, जो कभी बूढ़ा नहीं होता जो सब से तीव्र गति वाला है, वह मेरा मन अच्छे संकल्प वाला हो।

चार वर्ण

ब्राह्मण

अध्यापनमध्ययनं,
यजनं याजनं तथा ।
दानं प्रतिग्रहश्चैव,
ब्राह्मणानामकल्पयत् ॥

मनु० १ । ८८ ॥

अर्थ — पढ़ना-पढ़ाना, यज्ञ करना-कराना दान देना तथा लेना ब्राह्मण के कर्म हैं । परन्तु दान लेने की अपेक्षा पढ़ा कर और यज्ञ करा के आजीविका करनी उत्तम है ॥१॥

क्षत्रिय

प्रजानां रक्षणं दानं,

इज्याऽध्ययनमेव च ।
विषयेष्वप्रसक्तिश्च,
क्षत्रियस्य समासतः ॥

मनु० ॥ १ ॥ ८६ ॥

अर्थ--पढ़ना, यज्ञ करना, दान देना, प्रजा-पालन, विषयों मे आसक्त न होना, यह क्षत्रियों के कर्म हैं ॥१॥

वैश्य

पशूनां रक्षणं दान-
मिज्याऽध्ययनमेव च ।
वणिक्पथं कुसीदं च,
वैश्यस्य कृषिमेव च ॥

मनु० ॥ १ ॥ ६० ॥

अर्थ—पढ़ना, यज्ञ करना, दान देना, पशु पालन, व्यापार करना, व्याज (सूद) लेना

और खेती करना यह वैश्य के कर्म हैं।

शूद्र

एकमेव तु शूद्रस्य, प्रभुः कर्म समादिशत्।
एतेषामेव वर्णानां, शुश्रूषामनसूयया॥
मनु० १॥ ६१॥

अर्थ—परमेश्वर ने शूद्रोंके लिये ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य की सेवा करना-यही एक कर्म्म करने की आज्ञा दी है।

चार आश्रम

मनुष्य-जीवन अधिक-से-अधिक उपयोगी और शुद्ध बन सके इसी उपदेश की पूर्ति के लिये उसको चार विभागों मे विभक्त किया गया है।

१ ब्रह्मचर्याश्रम—आत्मिक और शारीरिक उन्नति मनुष्य को अपने

जीवन के पहले भाग मे, जिसकी न्यून-से-न्यून अवधि २५ वर्ष है, करनी चाहिये, यही आश्रम है जिस मे विद्याध्ययन करके ब्रह्मचर्य्य के नियमों का पूर्ण रीति से पालन करते हुए समस्त अन्तरीय और वाह्यकरणों को पुष्ट बनाया जाता और आत्मवल संचय किया जाता है।

२ गृहस्थाश्रम---जीवनके दूसरे भाग का नाम है। इस मे मनुष्य को मर्य्यादा के साथ विवाह करके सन्तान उत्पन्न करनी चाहिये और उपयोगी धर्म-पूर्वक उद्यम करके धन-संचय करना चाहिये।

३ वानप्रस्थ ४ सन्यास

तीसरा वानप्रस्थ और चौथा सान्यस आश्रम है। मनुष्य को २५ वर्ष गृहस्थ

जीवन व्यतीत करके समस्त गृह और गृह की सम्पत्ति अपने ज्येष्ठ पुत्र को सौंप कर गृहस्थाश्रम से मुक्त होकर ५१ वें वर्ष मे वानप्रस्थाश्रम मे चले जाना चाहिये। इस आश्रम मे आकर उसे तपस्वी जीवन व्यतीत करते हुए अपनी आवश्यकताओं, को न्यून-से-न्यून करके जनता की सेवा करनी चाहिये। इस आश्रम के लोग बिना लम्बी-चौड़ी वेतन लिये निश्शुल्क अध्यापन आदि सभी व्यवसायों (पेशों) की शिक्षा देने वाले बना करते थे और अब भी बन सकते हैं। इसके पश्चात् चौथे आश्रम मे प्रवेश करके जीवन के अन्तिम भाग को अभ्यास, स्वाध्याय और जनता को उपदेश देने आदि श्रेष्ठ कार्यों में व्यतीत करना चाहिये।

आर्य-समाज

'आर्य्य' शब्द का अर्थ है श्रेष्ठ वा अच्छा और 'समाज' का अर्थ है सभा वा संघ। इस लिये 'आर्य्य-समाज' का अर्थ हुआ अच्छे पुरुषों की सभा।

'आर्य्य-समाज' को महर्षि दयानन्द ने अप्रैल १८७५ ई० अर्थात् चेत सुदी ५ सम्वत् १९३२ वि० को बम्बई मे स्थापित किया था। इसके पश्चात् भारतवर्ष के प्रत्येक बड़े नगर और ग्रामों में समाज खुल गये। इस समय इनकी संख्या २००० से अधिक है।

आर्य्य-समाज के नियम

(१) सब सत्यविद्या और जो पदार्थ

विद्या से जाने जाते हैं उन सब का आदि मूल परमेश्वर है।

(२) ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान न्यायकारी दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्त्ता है। उसी की उपासना करनी योग्य है।

(३) वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।

(४) सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने मे सर्वदा उद्यत् रहना चाहिये।

(५) सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार कर करने

चाहिये।

(६) संसार का उपकार करना आर्य्य समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

(७) सब से प्रीति पूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य वर्तना चाहिये।

(८) अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिये।

(६) प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से संतुष्ट न रहना चाहिये, किन्तु सब की उन्नति मे अपनी उन्नति समझनी चाहिये।

(१०) सब मनुष्यों को सामाजिक सर्व हितकारी नियम पालने मे परतन्त्र रहना चाहिये और प्रत्येक हितकारी नियम मे सब स्वतन्त्र रहे।

आर्य्य-समाज के उपनियम

—:o:—

१—इसका नाम 'आर्य-समाज' है।

२—इस समाज के उद्देश्य वही हैं, जो इसके नियमों में वर्णन किये गये हैं।

३—जो लोग आर्यसमाज में नाम लिखाना चाहें और समाज के उद्देश्य के अनुकूल आचरण स्वीकार करें, वे आर्य्य-समाज में प्रविष्ट हो सकते हैं। परन्तु उनकी आयु अठारह वर्ष से न्यून न हो।

४—जो लोग आर्य्य-समाज में प्रविष्ट होंगे, वे आर्य्य' कहलावेंगे।

५—जो आर्य्य-समाज के उद्देश्य के विरुद्ध काम करेगा, वह न तो आर्य्य और न आर्य्य-सभासद् गिना जावेगा।

६—यह सभा प्रत्येक सप्ताह में न्यून-से-न्यून एक बार हुआ करेगी।

७—समाज के सब कार्यों के प्रबन्ध के लिये एक अन्तरङ्ग-सभा नियुक्त की जावेगी और इस मे तीन प्रकार के सभासद् होंगे, अर्थात्—

१—प्रतिनिधि (२) प्रतिष्ठित और (३) अधिकारी।

८—अधिकारी छः प्रकार के होंगे:-

(१) प्रधान, (२) उपप्रधान, (३) मन्त्री, (४) उपमन्त्री (५) कोषाध्यक्ष, (६) पुस्तकाध्यक्ष।

९—सब आर्य्य और आर्य्यसभासदों को संस्कृत वा आर्य्य-भाषा (हिन्दी) अवश्य जाननी चाहिये।

१०—सब आर्य्य और आर्य्य-सभासदों को उचित है, कि उत्सवों पर समाज

को दान दिया करें।

११-सब आर्य्य और आर्य्य-सभासदों को उचित है कि सुख और दुःख दोनों में परस्पर सहायता किया करें, छोटाई-बडाई का विचार न किया करें।

१२-चुनाव वर्ष पीछे हुआ करेगा। पुराना अधिकारी फिर नियत हो सकेगा। स्थान रिक्त होने पर अन्तरङ्ग सभा स्वयं नया अधिकारी चुन सकती है।

१३-विशेष कार्य के लिये उपसभायें बनाई जा सकती हैं।

१४-अन्तरङ्ग-सभा मास में दो बार हो।

१५-एक तिहाई सभासद् सभा कर लेवें।

११ सत्सङ्ग के नियम वा कार्यक्रम

१—सत्संग प्रातः रविवार अथवा अन्य

किसी सातवें दिन को हुआ करे।

२—पहिले सब मिलकर सन्ध्या वा अन्य वेद-मन्त्र उच्चस्वर से मिल कर पढ़े।

३—फिर ईश्वर-स्तुति, प्रार्थना-उपासना के मन्त्र तथा भजन हों। +

४—फिर स्वस्ति वाचन हवन-यज्ञ हो।

५—तत्पश्चात् वेद तथा अन्य आर्य्य-ग्रन्थों का पाठ हुआ करे।

६-पुनः उपदेश हो।

७-भजन तथा ऋग्वेद के अन्तिम (एकता के) सूक्त के ४ मन्त्रों का पाठ हो।*

+प्रार्थना उपासना के मन्त्र शांत स्वर से पढ करके एक व्यक्ति प्रार्थना करे फिर

---

* ये मंत्र सुन्दर छपे हुए हम से मिल सकते हैं मूल्य ॥) सैंकड़ा

आर्य्य-समाज के सिद्धान्त

ईश्वर विषय में

(१) ईश्वर एक है, कई ईश्वर नहीं।

(२) ईश्वर निराकार है। उस को आंख से नहीं देख सकते और न उसकी मूर्ति बना सकते हैं।

(३) ईश्वर सर्वज्ञ और सर्वव्यापक है। वह सब कुछ जानता है और छोटी-से-छोटी वस्तु के भी भीतर और बाहर विद्यमान है।

(४) ईश्वर सर्व-शक्तिमान् है, अर्थात् वह अपने किसी काम के करने के लिये आंख, कान, नाक आदि शरीर वा अन्य किसी उपकरण (औज़ार) की आवश्य-

---

स्वस्ति वाचन, शान्ति-पाठ पढ़कर भजन-गान करें।

कता नहीं रखता। जो कुछ करता है बिना किसी वस्तु वा व्यक्ति की सहायता के करता है।

(५) ईश्वर अजन्मा और निर्विकार है। वह मनुष्य के समान जन्म-मरण में नहीं आता। अवतार भी नहीं लेता। राम, कृष्ण आदि ईश्वर के अवतार नहीं थे। धर्मात्मा पुरुष थे, इस लिये उनके अच्छे कामों को स्मरण करना चाहिये परन्तु उनकी मूर्तियों को ईश्वर समझ कर नहीं पूजना चाहिये।

जीव

(१) जीव चेतन है। इसकी संख्या अनन्त है।

(२) जीव न कभी मरता है न उत्पन्न होता है। अर्थात् कभी ऐसा समय नहीं हुआ जब जीव न रहा हो और

न ऐसा समय होगा जब जीव न रहेगा।

(३) जीव मे ज्ञान तो है, पर थोड़ा। और शक्ति भी थोड़ी है, इस लिये जीव को अल्पज्ञ कहते हैं।

(४) जीव शरीर धारण करता है। कभी मनुष्य का, कभी पशु का, कभी कीड़े आदि का।

(५) जीव जैसा कर्म करता है उसको उसके फल के अनुसार वैसा ही शरीर मिलता है। बुरे कर्म के लिये बुरी योनि और अच्छे कर्म के लिये अच्छी योनि मिलती है। इसी को जीव अवतार कहते हैं। अवतार जीव का होता है, ईश्वर का नहीं।

(६) जीव जब अच्छे कर्म करते-करते सब से ऊंची अवस्था तक पहुँच जाता है तो मोक्ष मिल जाता है अर्थात शरीर

नहीं रहता और वह स्वतन्त्र विचरता हुआ ईश्वर के आनन्द मे मग्न रहता है।

(७) मोक्ष ३१ नील १० खर्ब ४० अर्ब वर्ष के लिये होता है। इसके पश्चात् जीव मोक्ष मे लौटता है और उत्तम ऋषियों का शरीर धारण करता है। इस शरीर मे यदि अच्छे काम करता है तो फिर मुक्त हो जाता है। और यदि बुरे कर्म करता है तो नीचे की योनियो का चक्र आरम्भ हो जाता है।

प्रकृति

(१) प्रकृति छोटे-छोटे परमाणुओं का नाम है।

(२) यह परमाणु जड है, इन मे ज्ञान नहीं।

(४) यह परमाणु अनादि और अनन्त

हैं अर्थात् न कभी उत्पन्न हुए, न नष्ट होंगे।

(४) ईश्वर इन्हीं परमाणुओं को जोड़ कर सृष्टि बनाता है। आग, पानी, वायु और पृथ्वी यह इन्हीं परमाणुओं के संयोग का फल है। सूर्य, चन्द्र आदि इन्हीं से बने है। हमारे शरीर भी इन्हीं परमाणुओं से बने है।

(५) जब परमाणु अलग-अलग हो जाते हैं तो इसको 'प्रलय वा ब्रह्मरात्रि' कहते हैं। जब सृष्टि बनी रहती है तो 'ब्रह्मदिन' होता है।

वेद

(१) वेद चार हैं। ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद।

मोक्ष की प्राप्ति के लिये जिन चार

साधनों की आवश्यकता है, वे इन चार वेदों मे बतलाये हैं, अर्थात् ज्ञान, कर्म, उपासना और विज्ञान । चारों वेदों मे चौबीस सहस्र मन्त्र और सात लाख अड़सठ सहस्र शब्द हैं ।

ऋग्वेद– सब से बडा है । इस मे दस मण्डल हैं और इन मण्डलों मे १०२८ सूक्त हैं, जिन मे १०५८९ ऋचाएं हैं। इन ऋचाओं मे १५३८२६ पद हैं, जिन मे ४३२००० अक्षर हैं ।

यजुर्वेद—मे ४० अध्याय और १९७६ मन्त्र हैं ।

सामवेद—में १५४२ साम-मन्त्र हैं ।

अथर्ववेद—मे २० काण्ड हैं, जिन में ७६० सूक्त और लगभग ६००० ऋचाएं हैं

(२) वेदों का ज्ञान ईश्वर ने सृष्टि

के आरम्भ मे चार ऋषियों को दिया अर्थात्—

अग्नि ऋषि को ऋग्वेद

आदित्य को यजुर्वेद

वायु को सामवेद

अंगिरा को अथर्ववेद

(३) इन ऋषियों ने वेदों का अन्य ऋषियों और मनुष्यों को उपदेश दिया। संसार-भर की सब विद्याएं वेदों से ही निकली हैं।

(४) वेद स्वतः प्रमाण हैं। परन्तु अन्य पुस्तकें परतः प्रमाण अर्थात् जो बात उनमे वेद के अनुकूल है वह ठीक है, जो वेद-विरुद्ध है वह ठीक नहीं।

(५) वेद संस्कृत-भाषा मे नहीं हैं, किन्तु देववाणी में हैं। संस्कृत-भाषा वेदों की भाषा से निकली है और अन्य

सब भाषायें संस्कृत से ।

(६) वेदों मे इतिहास नही है । वेदों मे यौगिक शब्द हैं; रूढ़ी नही । अर्थात् वेदों मे ऐसे शब्द आये हैं जो हम को मनुष्यों के नामों जैसे ज्ञात होते हैं। परन्तु उनके गुण-वाचक अर्थ हैं व्यक्ति वाचक नहीं, वे मनुष्य न थे।

(७) वेदों मे राम, कृष्ण आदि अवतारों का वर्णन नही है ।

(८) वेदों मे मुख्यतः तीन बातें हैं। ईश्वर के लिये भिन्न-भिन्न अवसरों के अनुकूल प्रार्थनायें, सृष्टि के नियम और मनुष्यों को उपदेश ।

(९) वेदों मे इन्द्र, अग्नि, वरुण, आदि शब्द कहीं ईश्वर के लिये आये हैं और कहीं भौतिक पदार्थों जैसे आग, पानी आदि के लिये । इसका पता

प्रकरण तथा संगति से लग सकता है।

(१०) पहिले संसार-भर में वेद-मत ही था। पीछे से भिन्न-भिन्न मत हो गये।

अन्य शास्त्र

आर्य्य-समाज वेदों को तो ईश्वर-कृत मानता है परन्तु इनके अतिरिक्त नीचे लिखे ऋषियों के ग्रन्थों को भी उस अंश तक प्रमाणिक मानता है जिस अंश तक वह वेदों के अनुकूल हों—

१—ब्राह्मण ग्रन्थ

आदि सृष्टि से लेकर समय-समय पर वेदों की व्याख्या महर्षि, मुनि करते चले आये हैं। उन सब व्याख्याओं का संग्रह लगभग महाभारत के समय हुआ है।

जिन ग्रन्थों मे यह संग्रह हुआ है, उन्ही को ब्राह्मण-ग्रन्थ कहते हैं । यह गणना मे तो बहुत है, परन्तु जो इस समय मिलते हैं उनके नाम यह है :—

२—वेदों के अंग

छः है-१ शिक्षा, २ कल्प, ३ निरुक्त, ४ व्याकरण, ५ ज्योतिष, ६ छन्द । वेदों के जानने के लिये इनका जानना आवश्यक है ।

शिक्षा मे—पाणिनीय, माण्डूकी आदि कोई ३० शिक्षायें आज-कल मिलती हैं ।

कल्पों का नाम-सूत्र ग्रन्थों मे देखो ।

व्याकरण मे—प्रातिशाख्य (अर्थात् वैदिक) व्याकरण ग्रन्थ, अष्टाध्यायी

और महाभाष्य मिलते हैं।

निरुक्त—पहिले अनेक 'निरुक्त' ग्रन्थ थे परन्तु अब केवल यास्काचार्य का ही मिलता है। वेद के अर्थ करने मे यह परमोपयोगी ग्रन्थ है।

ज्योतिष मे—सूर्य-सिद्धान्त मुख्य ग्रन्थ मिलता है।

३—वेदों के उपांग

वेदों के छः उपांग हैं, जिन को छः 'दर्शन' अथवा छः 'शास्त्र' भी कहते है। इनके नाम यह हैं—१ कपिल का 'सांख्य। २--वात्स्यायन भाष्य सहित, गौतम का 'न्याय'। ३--व्यास भाष्य सहित, पतञ्जलि का 'योग'। ४-प्रशस्त पाद भाष्य सहित, कणाद का 'वैशेषिक'। ५--व्या-

स का 'वेदान्त' और ६--जैमिनि का 'मीमांसा' दर्शन।

४—वेदों की शाखायें

चार वेदों की ११३१ शाखायें इस प्रकार हैं, ऋग्वेद की २१, यजुर्वेद की १०१, सामवेद की १०००, अथर्ववेद की ६।

५—११ उपनिषदें

जिनसे हमे ब्रह्मविद्या की प्राप्ति होती है, उन्हे 'उपनिषद्' कहते हैं। साधारण रीति से ग्यारह उपनिषदे ही प्रमाणिक समझी जाती हैं। उनके नाम यह है—१ ईश, २ केन, ३ कठ, ४ प्रश्न, ५ मुण्डक, ६ माण्डूक्य, ७ ऐतरेय ८ तैत्तिरेय, ६ छान्दोग्य, १० बृहदार-

एयक और ११ श्वेताश्वतर।

६—स्मृति ग्रन्थ

सब मिलाकर ८० स्मृतियां हैं। धर्म-शास्त्र वा मनुस्मृति इनमें प्रसिद्ध है।

७—सूत्र ग्रन्थ

गृह्यसूत्र १ गोभिल-गृह्यसूत्र, १ पार-स्कर-गृह्यसूत्र, ३ आश्वलायन-गृह्यसूत्र, आदि।

८—आर्ष-भाषा भाष्य ग्रन्थ

स्वामी दयानन्द के ग्रन्थ, सत्यार्थ प्रकाश, भाष्य भूमिका आदि।

यज्ञ

पांच यज्ञ प्रत्येक आर्य को प्रतिदिन

करने चाहिये।

(१) ब्रह्म-यज्ञ अर्थात् ईश्वर-पूजा और वेद-पाठ।

(२) देव-यज्ञ अर्थात् हवन।

(३) भूत-यज्ञ, अर्थात् चींटी, गाय, कुत्ते आदि आश्रित जीवों को भोजन।

(४) पितृ-यज्ञ, अर्थात् जीवित माता-पिता का सत्कार। मरे हुए माता-पिता का सत्कार करना असम्भव है। इस लिये मृतकों का श्राद्ध, तर्पण नहीं करना चाहिये।

(५) अतिथि-यज्ञ अर्थात् साधु संन्यासी आदि आए हुए का सत्कार करना।

संस्कार

प्रत्येक आर्य के सोलह संस्कार होने

चाहियें—

तीन-जन्म से पहले-(१) गर्भाधान (२) पुंसवन (३) सीमन्तोन्नयन। छः बचपन में-(१) जात कर्म (२) नामकरण (३) निष्क्रमण (४) अन्न-प्राशन (५) मुण्डन (६) कर्णवेध। दो विद्या पढ़ना आरम्भ करने के समय-(१) यज्ञोपवीत (२)वेदारम्भ।

दो विद्या समाप्त करने पर—

(१) समावर्त्तन (२) विवाह।

तीन पिछली अवस्था में (१) वानप्रस्थ (२) संन्यास (६) अन्त्येष्टिसंस्कार।

विवाह

(१) विवाह लड़की का न्यून-से-न्यून १६ वर्ष की अवस्था में और लड़के का

२५ वर्ष की अवस्था मे करना चाहिये।

(२) एक पुरुष एक ही स्त्री से विवाह कर सकता है।

(३) अक्षतयोनि विधवा अथवा बालविधवा का अक्षत-वीर्य्य पुरुष के साथ विवाह ठीक है।

(४) क्षतयोनि विधवा का क्षतवीर्य्य पुरुष के साथ नियोग हो सकता है, यदि आवश्यकता हो।

आर्य्य-समाज का संगठन

(१) न्यून-से-न्यून १० सभासदों का एक समाज होता है।

(२) प्रत्येक सभासद को अपनी आय का शतांश (१००वां भाग) चन्दे मे देना पड़ता हैं।

(३) शतांश चन्दा न देने वाले तथा सदाचार से न रहने वाले सभासदी से पृथक् किये जाते हैं।

(४) प्रान्त के समाजों को संगठित करने के लिये प्रान्तीय-प्रतिनिधि सभायें हैं जिन में प्रत्येक समाज के प्रतिनिधि जाते हैं। समाज के १० सभासदों के लिये एक प्रतिनिधि, इसके पश्चात् २० सभासदों के लिये दो प्रतिनिधि। यह प्रतिनिधि तीन वर्ष के लिये निर्वाचित किये जाते हैं।

(५) प्रतिनिधि भेजने वाले समाज को नियम-पूर्वक प्रतिनिधि-सभा को समाज के सभासदों के वार्षिक शुल्क का दशांश भेजना चाहिये।

(६) प्रान्तीय प्रतिनिधि-सभा के प्रबन्ध के लिये एक अन्तरङ्ग-सभा

३ आर्य सभासदो की संख्या ८७४८००० के लगभग है। इसमे १६३१ की जन-संख्या करने वालों के भ्रम तथा अनेक आर्यों को विना पूछे ही किसी दूसरी श्रेणी मे लिख लेने के कारण कुछ संख्या रह भी गई है। इसके अतिरिक्त मनुष्य-गणना के पीछे संख्या मे और भी वृद्धि हुई है।

४. १६४ सवेतन, २२८ अवेतन, १३० संन्यासी और १४ स्वतन्त्र व्याख्याता तथा भजनीक प्रचार करते हैं।

५. ५० अनाथालय और १४ विना मूल्य औषधि वांटने के औषधालय हैं।

६ आर्यो के निजी अथवा सभाधीन ४० मुद्रणालय और १०० पुस्तक विक्रयालय हैं।

७. लखनऊ मे एक आर्यन कोपरेटिव

बैंक है।

८. दो योगमण्डल तथा ३ संन्यासी पाठशालायें हैं।

९. हिन्दी, उर्दू, अंग्रेज़ी, गुजराती, तैलगू, सिन्धी आदि भिन्न-भिन्न भाषाओं के दैनिक, साप्ताहिक, पाक्षिक और मासिक ५० से ऊपर समाचार-पत्र है।

१०. भारत तथा बाहर के देशों मे प्रान्त-वार आर्य-प्रतिनिधि-सभायें है, जिन का काम आर्य-संस्थाओं का प्रबन्ध करना; उपदेशकों, पुस्तकों और समाचारपत्रों-द्वारा प्रचार करना तथा प्रत्येक समाज का निरीक्षण करना आदि है। प्रान्तवार उनके केन्द्र स्थानों के नाम ये हैं:—

१ लाहौर (पंजाब) २ आगरा (यू०पी०)

३ कलकत्ता (बंगाल-बिहार) ४ नरसिंह-पुर (सी०पी०) ५ अजमेर (राजपूताना) ६ बम्बई (बम्बई), ७ हैदराबाद (निज़ाम राज्य) ८ हैदराबाद (सिन्ध), ९ रंगून (ब्रह्मा) १० पोर्टलोइस (मोरिश-स द्वीप) ११ नैरोबी (दक्षिणी अफ़रीका) इनके अतिरिक्त विद्या तथा आजीविका प्राप्त करने व भ्रमण के लिये गये हुए भारतीय संसार के सभी देशों तथा संयुक्त-राज्य अमरीका, कैनेडा, बृटिश गायना, इङ्गलैण्ड, जर्मनी, फ्रांस, अराक, अरब, तिब्बत, चीन-जापान, आस्ट्रेलिया और मलाया आदि मे आर्य-समाज स्थापित कर रहे हैं ॥

आर्य-समाज के प्रचार के लिए कुछ उपयोगी ग्रन्थ

वैदिक धर्म का प्रचार करना हर आर्य का कर्तव्य है। 'कृण्वन्तो विश्वमार्य्यम्' के अनुसार तो हमे समस्त संसार को आर्य बनाना है। उठते-बैठते, चलते-फिरते, हमे धर्म-प्रचार की धुन होनी चाहिए। हमारा सौभाग्य है कि हमारे साहित्य मे आर्य समाज के प्रचार के लिए कुछ विशेष ग्रन्थ निकल आए हैं।

१. धर्म का आदि स्रोत—इसके लेखक श्री गंगा प्रसाद जी एम. ए. (Chief judge) न्यायाधीष गढ़वाल राज्य हैं। इसमे उन्होंने सिद्ध किया है कि दुनियां के सब अन्य धर्म वैदिक धर्म से निकले हैं

जो कि सब मे श्रेष्ठ है मू एक रुपया ।

२. आर्य समाज क्या है ?--ले० नारायण स्वामी जी । भारतवर्ष में और विदेशों मे आर्यसमाज के प्रचार के लिए सर्वोत्तम पुस्तक । मू० सात आना

३ आर्यों के नित्य कर्म—ले० अमर शहीद स्वामी श्रद्धानन्द जी ।

मू० तीन आना

यदि आप आर्य समाज का विस्तार चाहते हैं तो इन पुस्तकों को घर घर मे पहुंचा दे । जिस किसी के भी हाथ मे ये पुस्तके पहुंचेगी, वह निश्चय ही पक्का वैदिक धर्मी बन जावेगा ।

आर्य्य-समाज का काम

(१) शिक्षा का कार्य—आर्य्यसमाज के अधीन समस्त भारतवर्ष मे इस समय २६ कालेज, २०० हाई स्कूल १५० अंग्रेज़ी मिडिल-स्कूल, प्रायमरी-स्कूल और १४२ रात्रि स्कूल, ५३ गुरुकुल, ३ कन्या गुरुकुल, २ कन्या कालेज, २हाई स्कूल है। इस प्रकार छोटे-बड़े सब मिलकर ५४७ विद्यालय है जिन मे ५६०६० विद्यार्थी पढ़ते हैं। २७८० अध्यापक हैं और २० लाख ३ सहस्र ४७१ रु० १० आना ६ पाई वार्षिक व्यय होता है। इन विद्यालयों के भवनों की लागत ७८ लाख ७१ सहस्र ५३८।॥≡ है। बड़े-बड़े विद्यालयों के नाम यह हैं—१ डी. ए. वी. कालिज लाहौर, २ गुरुकुल काङ्गड़ी,

३ गुरुकुल वृन्दावन, ४ कन्या-गुरुकुल देहरादून, ५ कन्या-महाविद्यालय जालन्धर, ६ डी. ए वी. कालिज देहरादून, ७ डी. ए. वी. कालिज कानपुर, महाविद्यालय ज्वालापुर इत्यादि।

इनके अतिरिक्त ३०० संस्कृत पाठशालाये और ७०० कन्या-पाठशालाये भी हैं।

(२) अनाथालय जिन मे अनाथ बच्चे पाले जाते हैं.-जैसे कि अनाथालय फ़ीरोज़पुर, अजमेर, आगरा, बरेली, लखनऊ, लाहौर आदि ५० अनाथालय भारत मे विद्यमान हैं।

(३) ४६ विधवा-आश्रम जिन के द्वारा विधवाओं का विवाह होता है, सैकडों विधवायें इस प्रकार पतित होने से बचा ली जाती है।

(४) अछूतों के उद्धार के लिये अनेकों सभाये हैं।

(५) शुद्धि-सभा—इसके द्वारा उन भाइयों की जो कभी मुसलमान अथवा ईसाई हो गये हैं यदि वे चाहें तो शुद्धि की जाती है और उनको वैदिक धर्म मे लिया जाता है।

(६) बाल-विवाह और बूढ़ों का विवाह रोकने मे आर्य्यसमाज ने बड़ा काम किया है।

(७) सच्ची जीवरक्षा की ओर समाज ने लोगों का बहुत ध्यान आकर्षित किया है। सहस्रों लोग जो पहले मांस और मद्य का सेवन करते थे, अब इन बुरी वस्तुओं को छोड़ कर पवित्र आहार ग्रहण करने लगे हैं।

(८) हवन की प्रथा बन्द हो गई थी

यह फिर चल पड़ी है।

(६) वेद पढ़ने का अधिकार स्त्री, शूद्र आदि सभी को प्राप्त है और वेदों का प्रचार बढ़ता जाता है।

आइये और आर्य्य समाज के सभासद बनिये क्योंकि इसी से देश का कल्याण होगा।

१६ ऋषि दयानन्द—कृत ग्रन्थ

आर्य्य स्त्री-पुरुषों को स्वाध्याय के लिये सब से उच्च पदवी ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों को देनी चाहिये और प्रयत्न करना चाहिये कि ऋषि के ग्रन्थ उन्ही की भाषा मे पढ़े जायें। इन्हीं ग्रन्थों का प्रचार कर अन्य पुस्तकों को दूसरी कोटि मे रक्खें।

१. आर्य्याभिविनय-(सं० १९३२) ऋग्वेद और यजुर्वेद के १०८ मन्त्रों की सुन्दर व्याख्या है। इसी ढंग पर स्वामी जी स्वयं प्रार्थना करते थे। बढ़िया मूल्य ≡)

सत्यार्थ प्रकाश—(आर्यभाषा) यह स्वामी जी का संवत् १९३२ का छपवाया हुआ सब से पहला बड़ा ग्रन्थ है। पहले संस्करण में अनेक कारणों से कई भूलें रह गईं थीं। संवत् १९३९ में इसका फिर संशोधन करके स्वामी जी ने छपवाया था। इस ग्रन्थ ने भारत के धार्मिक जगत् में हलचल मचा दी है। इस पुस्तक को पढ़ कर जहां मनुष्य को अपने धर्म का वास्तविक ज्ञान हो जाता है, वहां संसार के अन्य मतमतान्तरों का भी बोध हो जाता है, यह एक 'अद्वि-

तीय' पुस्तक है। इसके पाठ से किसी को भी चाहे वह किसी भी धर्म का मानने वाला क्यों न हो, वंचित न रहना चाहिये।

सत्यार्थ प्रकाश के पढ़ने की रीति।

संस्कृत जानने वाले विद्वान् जैसे चाहें पढ़ कर प्रत्येक बात समझ सकते हैं। अन्य साधारण भाषा जानने वाले इसे पहिले इस प्रकार पढ़े—

(१) भूमिका (२) दूसरा समुल्लास (३) दसवा (४) ग्यारहवा (५) चौथा (६) पांचवां (७) छठा (८) तेरहवां (९) चौदहवां (१०) तीसरा (११) सातवां (१२) आठवां (१३) बारहवां (१४) नवां और तब पहला समुल्लास। इस ग्रन्थ

को बार-बार पढ़ना चाहिये। स्वर्गीय पं० गुरुदत्त जी कहा करते थे कि मैंने इसे १८ बार पढ़ा है और जब भी पढ़ता हूं, तब ही नई नई बाते ज्ञात होती हैं।

३ काशी शास्त्रार्थ--(सं० १६२६ वि०)

४. सत्यधर्म-विचार—(स० १६३५)

५. पंचमहायज्ञ-विधि—(सं० १६३५)

६. आर्योद्देश्य-रत्नमाला—(सम्वत् १६३५)

७. सस्कार-विधि—(सवत् १६३२) यह ग्रन्थ पहले पहल ऋषि ने बम्बई मे छपवाया था। फिर सं० १६४० मे इस का सशोधन किया गया। इस मे मनुष्य जीवन का समय-विभाग (प्रोग्राम) लिखा है और बतलाया गया है कि सोलह संस्कारों के करने ही से मनुष्य सम्पूर्ण मनुष्य बन सकता है।

बना सकते हैं। गुरु 'समर्थ राम दास' तथा 'शिवा जी' की माता ने ही उनको इतना शूरवीर बनाया था। 'नेपोलियन' को भी इतना वीर, धीर, गम्भीर और संसार-विजेता, उस की माता ने ही बनाया था। 'एडीसन' को विज्ञान-वेत्ता उसकी माता ने ही बनाया था। 'अभिमन्यु' और 'लव', 'कुश' को युद्ध-विद्या, शस्त्र-प्रयोग गर्भ मे ही सिखाये गये थे।

१---गर्भाधान----श्रेष्ठ सन्तान उत्पन्न करने के लिये यह संस्कार किया जाता है। युवा स्त्री-पुरुष को उत्तम सन्तान की इच्छा हो, तो विशेष तत्परता से प्रसन्नता पूर्वक गर्भाधान करें, नही तो सन्तान कभी उत्तम उत्पन्न न होगी। गर्भाधान का समय

रजोदर्शन के दिन से सोलहवीं रात्रि तक है। उन मे प्रथम चार रात्रि तथा पर्व-रात्रि वर्जित हैं।

२-पुंसवन-संस्कार—जब कि गर्भ की स्थिति का ज्ञान हो जाय, तब दूसरे वा तीसरे महीने गर्भ की रक्षा के लिये यह संस्कार किया जाता है। इसमें दोनों स्त्री-पुरुष प्रतिज्ञा करते हैं कि वह आज से कोई ऐसा कार्य्य न करेगे जिस से गर्भ गिरने का भय हो।

३-सीमन्तोन्नयन—यह संस्कार गर्भ से चौथे मास मे बच्चे की मानसिक शक्तियों की वृद्धि के लिये किया जाता है। इस मे ऐसे साधन किये जाते हैं जिन से स्त्री का मन सन्तुष्ट रहे।

४-जातकर्म--यह संस्कार बालक के जन्म लेते ही किया जाता है। बालक

का पिता उसकी जिह्वा पर सोने की सलाई के द्वारा 'घी' और 'शहद' से 'ओ३म्' लिखता है और उसके कान मे 'त्वं वेदोऽसि' कहता है।

२-नामकरण-जन्म से ग्यारहवे दिन अथवा १०१ वें दिन वा दूसरे वर्ष के आरम्भ मे यह संस्कार किया जाता है। इसमे बालक का नाम रक्खा जाता है। नाम प्रिय तथा सार्थक रखना चाहिये।

३--निष्क्रमण-यह संस्कार जन्म से चौथे महीने मे, उसी तिथि मे, जिसमे बालक का जन्म हुआ हो, किया जाता है। इसका उद्देश्य बालक को उद्यान की शुद्ध वायु के सेवन और सृष्टि के अवलोकन का प्रथम शिक्षण है।

७--अन्नप्राशन--छटे वा आठवे महीने मे जब बालक की शक्ति अन्न पचाने की

हो जावे, तब यह संस्कार किया जाता है।

८--चूड़ा-कर्म अथवा मुण्डन संस्कार पहिले अथवा तीसरे वर्ष मे बालक के बाल काटने के लिये किया जाता है।

९-कर्णवेध—कई रोगों को दूर करने के लिये बालक के कान बीधे जाते हैं। यह संस्कार तीसरे वा पांचवे वर्ष मे करना चाहिये।

१०-उपनयन—जन्म-वर्ष से सातवें वर्ष मे इस संस्कार से लड़के वा लडकी को यज्ञोपवीत पहनाया जाता है।

यज्ञोपवीत का मन्त्र

यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं,
प्रजापतेर्यत् सहज पुरस्तात्।
आयुष्यमग्रयं प्रतिमुञ्च शुभ्रं,

यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः ॥

११--वेदारम्भ-- उपनयन संस्कार के दिन वा उस से एक वर्ष के भीतर गुरुकुल मे वेदों का आरम्भ गायत्री मन्त्र से किया जाता है।

१२--समावर्तन--जब ब्रह्मचर्य्य-व्रत की समाप्ति पर वेद-शास्त्रों के पढ़ने के पश्चात् गुरुकुल छोड़ कर अपने घर ब्रह्मचारी जाता है, उस समय यह संस्कार किया जाता है।

१३-विवाह विद्या-समाप्ति के पश्चात् जब लडकी-लड़का घर आ जावे, तब यह संस्कार किया जाता है। सब प्रकार से योग्य लड़के-लड़की का ही विवाह करना चाहिये।

१४-वानप्रस्थ-का समय ५० वर्ष के उपरान्त है। जब घर मे पुत्र का भी

पुत्र (पोता) हो जावे, तब गृहस्थ के धन्धों में फंसे रहना अधर्म है। उसी समय यह संस्कार किया जाता है।

१५–संन्यास–वानप्रस्थी बन में रहकर जब सब इन्द्रियों को जीत ले, किसी में मोह और शोक न रहे तब केवल परोपकार के हेतु संन्यास आश्रम में प्रवेश के लिये यह संस्कार किया जाता है।

१६–अन्त्येष्टि संस्कार–मनुष्य शरीर का यह अन्तिम संस्कार है, जो मरने के पश्चात् शरीर को जला कर किया जाता है।

---

१ ब्रह्म-यज्ञ, प्रतिदिन सायं-प्रातः।

२ देव-यज्ञ, प्रतिदिन ,,

३. बलि-वैश्वदेव-यज्ञ, ,,

४. पितृ-यज्ञ, ,,

५ अतिथि-यज्ञ, ,,

६. दर्शेष्टि (कृष्ण-पाक्षिक यज्ञ) प्रति अमावस्या।

७ पौर्णमास्येष्टि (शुक्ल-पाक्षिक यज्ञ) प्रति पूर्णमासी।

८. सम्वत्सरेष्टि (नये वर्ष का यज्ञ) चैत्रशुक्ल १

९ दयानन्द महायज्ञ (आर्य-समाज की स्थापना) चैत्र शुक्ल ५।
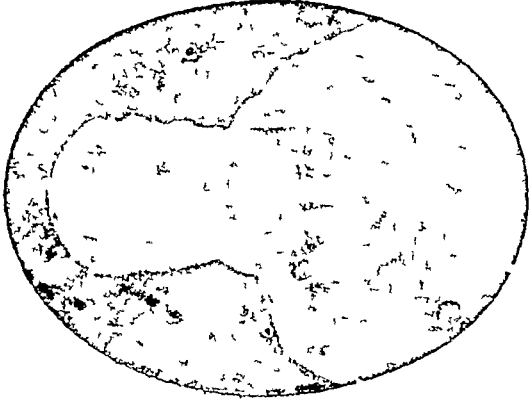
हैद्राबाद सत्याग्रह के प्रथम डिक्टेटर
श्री महात्मा नारायण स्वामी जी महाराज

गुरुकुल कांगडी के भूतपूर्व आचार्य
स्व० श्री रामदेव जी

पञ्जाब में आर्यसमाज के मुख्य नेता
स्व०श्री महात्मा हंसराज जी
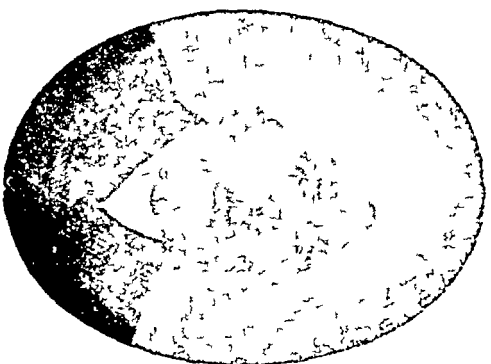
पञ्जाब केसरी ला० लाजपतराय

१०. वैशाखी, सौर वर्ष का आरम्भिक दिन, प्रथम वैशाख ।

११. रामनवमी (राम-जन्म-दिन) चैत्रसुदि ९ ।

१२. बसन्त नवान्नेष्टि (नये अन्न का यज्ञ) वैशाख मीन, मेष के सूर्य मे ।

१३. वरुण प्रघास चातुर्मास्येष्टि, आषाढ़

१४. श्रावणी, श्रावण-पूर्णमासी ।

१५. श्रावण-कर्मयज्ञ (रक्षाबन्धन) श्रावण-पूर्णमासी ।

१६. कृष्णाष्टमी (कृष्ण-जन्म-दिन) भाद्रपद-कृष्ण ८ ।

१७. विरजानन्द-उत्सव, आश्विनकृष्ण १३

१८. विजय-दशमी (दशहरा) आश्विनशुक्ल १०

१९. शरद नवान्नेष्टि-नये अन्न का यज्ञ कार्तिक कन्या तुला के सूर्य मे ।

२०. दयानन्दोत्सव (दीपमाला) कार्तिक

२१. साकमेधचातुर्मास्येष्टि--कार्तिक

पूर्णमासी ।

२२ उत्सर्गकर्म (यज्ञ)-पौषरोहिणीनक्षत्र

२३ लोहडी-पौष मासान्त ।

२४. संक्रान्ति (माघी) प्रथम माघ ।

२५ बसन्त-पञ्चमी (हकीकत बलिदान) माघ शुक्ल ५ ।

२६. दयानन्द-बोधोत्सव (शिवरात्रि) फाल्गुन कृष्ण १४ ।

२७. वीर-उत्सव (लेखराम-बलिदान)

२८. होली, फाल्गुण कृष्ण १३-१४-१५

२९. वैश्वदेव चातुर्मास्येष्टि, फाल्गुण पूर्णमासी ।

३०. गुरुदत्त उत्सव-चैत्र कृष्ण १४ ।

३१. श्रद्धानन्द-बलिदान, पौषवदी १४ ।

३२. राजपाल-बलिदान, चैत्र वदी १२

आर्य्य-पर्व-पद्धति

निम्नलिखित त्यौहार और पर्व आर्य
पुरुषों को मनाने चाहिये। यह पर्व आर्य
सार्वदेशिक सभा की नियत जन्म शता
ब्दी समिति ने ऋषि दयानन्द शताब्दी
के शुभ अवसर पर स्वीकार किये थे।

(१) नवसंवत्सरोत्सव-नये वर्ष का
यज्ञ चैत्र सुदि १ नवसंवत्सरारम्भोत्सव
संसार की प्रायः सब सभ्य जातियों मे
मनाया जाता है। सम्वत्सर का प्रारम्भ
आदि सृष्टि मे शुक्लपक्ष के प्रथम दिन
प्रतिपदा को प्रथम सूर्योदय होने पर
हुआ था। नूतन वर्ष के स्वागतार्थ आर्य-
जाति मे आनन्दानुभव के साथ यज्ञ
आदि धर्मानुष्ठान पूर्वक उत्सव के
मनाने की परिपाटी है।

(२) आर्य समाज का स्थापना-दिवस

दयामूर्ति ऋषि दयानन्द ने आर्य-जाति तथा वैदिक धर्म के पुनरुद्धारार्थ और संसार के उपकारार्थ भारत की प्रसिद्ध नगरी बम्बई मे शुभ तिथि चैत्र सुदी ५ सम्वत् १९३२ वि० शनिवार तदनुसार १० एप्रिल सन० १८७५ ई० को प्रथम आर्य-समाज की स्थापना की। अतः इस तिथि पर सब आर्य-समाजों को उत्सव करने चाहियें। संसार के उपकार और देश-देशान्तरों मे वैदिक धर्म के प्रचार के साधनों पर विचार करके अपने अन्दर नया जीवन धारण करना चाहिये।

(३) रामनवमी (श्रीराम जन्म दिन)

चैत्र सुदी नवमी

प्राचीन भारत के धर्म प्राण तथा गौरव-सर्वस्व महात्मा श्रीरामचन्द्र का आदर्श-चरित्र आर्य-जाति के लिये अनुकरणीय तथा शिक्षाप्रद है। निष्काम कर्म वैदिक धर्म का सिद्धान्त है, और इस का पूर्णरूप से पालन केवल प्रातः स्मरणीय श्रीराम द्वारा ही हुआ है। उन्हीं पवित्र-नाम राम के जन्मदिन की शुभ तिथि चैत्र सुदी नवमी है। इस दिन मर्यादा-पुरुषोत्तम राम के चरित्र के अध्ययन वा स्वाध्याय के लिये रामायण की कथा होनी चाहिये। प्रत्येक आर्य को उनके पथ पर चलने का दृढ़ संकल्प करना चाहिये।

(४) हरितृतीया (वर्षा-ऋतु उत्सव)

श्रावण सुदी तृतीया

स्थलचर, जलचर तथा नभचर सभी प्राणियो का जीवन जल पर निर्भर है। वर्षाऋतु का शुभ आगमन होते ही प्रकृति-दृश्य बदल जाता है। चारों ओर हरियावल-ही-हरियावल नेत्रों का सत्कार करती है। दादुरध्वनि और मयूरों की कूक दशों दिशाओं को मुखरित कर देती है, प्रकृति मे आनन्द-ही-आनन्द का एकाधिपत्य व्याप जाता है। ऐसे समय मे सहृदय भारतवासी भला कैसे उदासीन रह सकते हैं ? वह भी प्रकृति के मधुर स्वर मे अपना स्वर मिलाने के लिये वर्षा-उत्सव मनाते हैं।

(५) श्रावणी उपाकर्म

श्रावण-पूर्णमासी

शरीर की स्थिति और उन्नति जिस प्रकार अन्न से होती है, इसी प्रकार सारे शरीर के राजा मन का भी उत्कर्ष और शिक्षण स्वाध्याय से होता है । अतएव स्वाध्याय मनुष्य के लिये अन्नाहार के समान ही आवश्यक और अनिवार्य है प्राचीन काल मे वैसे तो लोग नित्य ही वेदपाठ मे रत रहते थे किन्तु वर्षाऋतु मे वेदपाठ, धर्मोपदेश और ज्ञान-चर्चा का विशेष आयोजन किया जाता था। इसी दिन पहले यज्ञोपवीत बदले जाते थे। इस विशेष वेदोपदेश का प्रारम्भ श्रावण-पूर्णिमा, श्रावण सुदी पञ्चमी को होता था।

(६) श्रीकृष्ण जन्माष्टमी

भाद्रपद वदी अष्टमी

इस समय भारत के शृंखलाबद्ध इतिहास की अप्राप्यता मे यदि भारतीय अपना मस्तक समुन्नत जातियों के समक्ष ऊंचा उठाकर चल सकते है, तो भगवान् कृष्ण की दिव्य वाणी गीता की विराजमानता से। ऐसे अद्वितीय योगी राज का जन्मोत्सव मनाने के लिये किस भारतीय का हृदय उत्सुक न होगा? वास्तव मे कृष्ण भारत की आत्मा थे। उनका जन्म आज से ५१३३ वर्ष पूर्व भाद्रपद बदी अष्टमी बुधवार रोहिणी नक्षत्र से मथुरा मे हुआ था।

(७) विजय दशमी

आश्विन सुदी दशमी

प्राय: देखने में आता है कि विजय-दशमी रावणवध और श्री रामचन्द्र की लंका विजय की तिथि समझ कर मनाई जाती है। परन्तु वास्तव में विजय घटना का इस उत्सव के साथ कोई सम्बन्ध नही। प्राचीन काल में इसका शुद्ध स्व-रूप यह था कि इस दिन राजागण अपनी सहस्र सेना सहित सजधज के विजय-यात्रा का नियमबद्ध उपक्रम करते थे। वैश्य भी अपनी बहनों में बैठ कर इसी प्रकार व्यापार-यात्रा का प्रारम्भ सूचक अनुष्ठान करते थे। आज कल इसकी पद्धति यह होनी चाहिये

कि बस्ती के बाहर कुछ दूर तक यात्रा की जाय। इस अवसर पर खड्ग का संचालन, बाणों से लक्ष्यवेध तथा गतका आदि शस्त्राभ्यास के कौतुकों का प्रदर्शन होना चाहिये। बलहीन आर्य-जाति मे इस समय शक्ति-संचय की बडी आवश्यकता है॥

श्रीमद्दयानन्द निर्वाण उत्सव

दीपावलि कार्तिक अमावस्या

दीपावलि के विषय मे भी विजय-दशमी के समान एक कल्पित गाथा चल पड़ी है कि श्री रामचन्द्र जी के बन-वास से लौट कर अयोध्या मे पहुंचने पर उनकी प्रजा ने उस हर्षोत्सव के उपलक्ष्य मे आज दीपावलि की थी। वास्तव मे बात यह है कि आज के दिन

से शीत का शासन आरम्भ होता है। भावी शीत के निवारण के लिये उष्ण-वस्त्रों का प्रबन्ध करना होता है, वायु-मण्डल का संशोधन हवन यज्ञ से तथा घरबार की स्वच्छता लिपाई-पुताई से की जाती है। इसी समय श्रावण की उपज (फ़सल) का आगमन होता है, इसी फ़सल के स्वागत के लिये दीपमाला का उत्सव मनाया जाता है। किन्तु इस महारात्रि का एक महत्व इस घटना ने और भी बढ़ा दिया है। इसी दिन सायं काल विक्रमी स० १६४० तदनुसार २० अक्टूबर सन १८८३ ई० मंगलवार को २०वीं शताब्दी के अद्वितीय वेदोद्धारक और वर्तमान आर्य्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द की उच्च आत्मा ने इस नश्वर शरीर को छोड़ा

था। अतः आज के दिन ऋषि के गुणानुवाद गाये जाने चाहिये। उनके पवित्र चरित्र से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये। इस दिन चार-आने प्रति जन के हिसाब से निकाल कर दान वेद-प्रचार मे लगाना चाहिये।

(९) संक्रान्ति

यह पर्व चिरकाल से चला आता है। सभी प्रान्तों मे यह एक जैसा मनाया जाता है। आज शीत अपने यौवन पर होता है। अतः स्थान २ पर हवन यज्ञ होने चाहिये, तिल के लड्डू बांटे जाये, और अपनी सामर्थ्य अनुसार कम्बल आदि दीन दुखियों को दान दिए जाये।

(१०) बसन्त पंचमी

माघ सुदी पञ्चमी

यह समय बहुत सुहावना होता है। सारी प्रकृति ने बसन्ती बाना पहन लिया है। खेतों मे जहां तक दृष्टि दौड़ाये हरियावल-ही-हरियावल दिखाई देती है। क्या पशु क्या पची और क्या मनुष्य सबका हृदय प्रसन्नता से खिलने लगता है। इस समय आमोद-प्रमोद और राग-रंग को सूझती है, इस दिन पीताम्बर (पीले वस्त्र) धारण कर हवन यज्ञ के पश्चात् बसन्ती मोहन भोग वा हलवे का भोजन करें। समूहरूप से सम्मिलित हो कर उपवन कुसुमोद्यान में भ्रमण कर तथा बालकों की क्रीड़ा की प्रदर्शिनी करें जिस से कि बसन्तोत्सव की उत्कर्ष वृद्धि हो।

(१३) वीर-उत्सव लेखराम-बलिदान

फाल्गुण सुदी तृतीया

आर्य्यसमाज के परिमित मण्डल मे कोई भी ऐसा व्यक्ति न होगा, जो धर्मवीर पं० लेखराम 'आर्य्य पथिक' के नाम और काम को न जानता हो। पं० लेखराम भावुकता और धार्मिक श्रद्धा की साक्षात् मूर्ति थे। वह अत्यन्त त्यागी, सरल-स्वभाव, प्रतिज्ञा-पालन के पक्के, तेजस्वी, आर्य्य-सिद्धान्त के अटल विश्वासी, सुलेखक आर्य्य प्रचारक थे। मोहम्मदी लोग उनसे बहुत द्वेष रखते थे, उन्होंने छल-कपट से उनको मारना चाहा। समय पाकर एक मुसलमान नवयुवक ने उनके पेट मे कटार घोंप दी, जिससे फाल्गुण

सुदी ३ सम्वत् १९५३ को रात्रि के दो बजे उन्होंने अपने नश्वर शरीर को वैदिक धर्म पर बलिदान कर दिया। हमे चाहिये कि इस पर्व पर धर्मवीर के अन्तिम वाक्य "आर्य समाज का लेख का काम बन्द नही होना चाहिये" सदा ध्यान मे रख कर आर्य्यसमाज के साहित्य की उन्नति करनी चाहिए।

(४) वसंती (आषाढ़ी)

नवशस्येष्टि होली फाल्गुण-पूर्णिमा

आषाढ़ की फ़सल भारत की सब फ़सलों मे सर्वश्रेष्ठ है। ऐसी जीवनाधार सर्वपालक शस्य (साढ़ी) के आगमन पर भारतवासियों का आनन्द-उत्सव और रङ्गरलियां मनाना स्वाभाविक ही है। यह

पर्व प्रत्येक हिन्दू के घर भारतवर्ष मे एक सिरे से दूसरे सिरे तक बड़े समारोह से मनाया जाता है। इस पर्व पर सब लोग ऊंच-नीच, छुटाई-बड़ाई का विचार छोड स्वच्छ हृदय से आपस मे मिलते थे। इतर आदि सुगन्धित द्रव्यों को परस्पर उपहार रूप से व्यवहार मे लाते थे। परन्तु उसके स्थान पर आज रंग बखेरने की कुप्रथा चल पड़ी है। अतः आर्य-पुरुषो को इस कुरीति को दूर करने का यत्न करना चाहिये और सभ्य रीति से इस पर्व को मनाना चाहिये। हो सके तो अपने कपड़े परमात्मा की भक्ति के रंग मे रंगने चाहियें जिस से आत्मा पर भी प्रभु-प्रेम का रंग चढ़ सके।

(१५) श्रद्धानन्द बलिदान-दिवस

पौष वदी १४

स्वामी श्रद्धानन्द आर्य्य-समाज के निर्माताओं में से एक थे। स्वामी श्रद्धानन्द ने आर्य समाज के वैदिक आदर्श को क्रियात्मक रूप देने के लिये सर्वस्व त्याग किया। स्वयं अपना जीवन वैदिक आदर्श के अनुसार चार आश्रमों से क्रमशः बिताया। धर्म प्रचार, सत्य प्रचार तथा कर्मशीलता की मूर्ति थे। पौष बदी १४ को आप दिल्ली में रोगार्त थे। एक मुसलमान धर्म-चर्चा के निमित्त आया। अवसर देख कर स्वामी जी को पिस्तौल का लक्ष्य बना दिया। घातक पकड लिया गया। उसे न्यायालय से फांसी

की आज्ञा मिली। अस्तु ! स्वामी जी का अनुकरण करने के लिये विचार करना चाहिये।

(१६) राजपाल-बलिदान-द्वादशी

चैत्र वदी १२

म० राजपाल जी ने 'आर्य पुस्तकालय व सरस्वती आश्रम' स्थापित कर आर्य-जगत् का बड़ा उपकार किया--वैदिक साहित्य प्रकाशित किया। इसी प्रकाशन-विभाग द्वारा आप ने 'रंगीला रसूल' नाम की पुस्तक प्रकाशित की जिस पर मुसल-मानों ने आपत्ति की। फल-स्वरूप महाशय जी पर २६ दिसम्बर १९२७ ई० को खुदाबख्श नामक मुसलमान युवक ने प्रथम घातक प्रहार किया।

मुसलमानों की प्यास इस से भी न बुझी। इल्मदीन नामक एक मुसलमान ने ६ अप्रेल १९२९ को २ बजे दोपहर को सोते हुए महाशय जी पर पुनः आक्रमण किया जो उनकी मृत्यु का कारण बना। घातक पकड़ा गया उसे न्यायालय से फांसी की आज्ञा मिली। महाशय जी शहीद हो गए; उनका नाम आर्य जगत् मे अमर हो गया। पर मुसलमानों को यह न समझना चाहिए कि महाशय जी की मृत्यु के साथ वैदिक साहित्य का प्रकाशन और आर्य समाज का प्रचार बन्द हो जाएगा। महाशय जी का स्थापित किया हुआ 'आर्य पुस्तकालय व सरस्वती आश्रम, अनारकली लाहौर' अब भी पहिले की तरह उच्च कोटि का साहित्य निकाल कर

वैदिक धर्म की सेवा कर रहा है। आर्य-बन्धुओं को इसे अपना ही पुस्तकालय समझना चाहिए और इसको यथा सम्भव सहयोग देना चाहिए।

आर्यों के सामाजिक धर्म

१. समाज मे जाना, दान वा चन्दा देना सुशीलता से बैठना। २. प्रत्येक कार्य में उत्साह से भाग लेना। ३. एक दूसरे के दुःख-सुख मे सम्मिलित होना। ४ अपनी बिरादरी बनाना। ५. अपने सम्बन्ध आर्यों से रखने। ६ बालको का आर्य-कुमार सभाओं से सम्बन्ध जोड़ना। ७. विवाहादि पौराणिक भाई-बन्धुओ के जाल से बाहर निकल कर करना। ८ दूसरो की सहायता करना। ९ अपने

संन्यासियों, उपदेशकों, पुरोहितों का मान करना । १०. आर्य समाज के पत्रों को प्रोत्साहित करना । ११. अपने बालको को शिल्प-विद्या सिखाना तथा गुरुकुल और कन्या-गुरुकुल मे भेजना ।

प्रातः काल के भजन

१--जय-जय पिता परम आनन्द दाता ।
जगदादि कारण मुक्ति प्रदाता ॥
२--अनन्त और अनादि विशेषण हैं तेरे ।
सृष्टि का स्रष्टा तू धर्ता संहरता ॥
३--सूक्ष्म-से-सूक्ष्म तू है स्थूल इतना ।
कि जिस में यह ब्रह्माण्ड सारा समाता ॥
४--मै लालित वा पालित हूं पितृस्नेह का ।
यह प्राकृत सम्बन्ध है तुझ से ताता ॥
५--करो शुद्ध निर्मल मेरी आत्मा को ।

करूं मैं विनय नित्य सायं व प्रातः ॥
६--मिटाओ मेरे भय आवागमन के।
फिरूं न जन्म पाता और बिलबिलाता ॥
७--बिना तेरे है कौन दीनन का बन्धु।
कि जिसको मै अपनी अवस्था सुनाता ॥
८--'अमी'रस पिलाओ कृपा करके मुझको
रहूं सर्वदा तेरी कीर्ति को गाता ॥

भजन २

१--हुआ ध्यान मे ईश्वर के जो मग्न,
उसे कोई क्लेश लगा न रहा।
जब ज्ञान की गंगा मे नहाया,
तो मन मे मैल ज़रा न रहा ॥१॥
२--परमात्मा को जब आत्मा मे,
लिया देख ज्ञान की आंखो से।
प्रकाश हुआ मन मे उसके,
कोई उससे भेद छिपा न रहा ॥२॥
३-पुरुषार्थ ही इस दुनिया में,

हर कामना पूरी करता है ।
मन चाहा सुख उसने पाया
जो आलसी बन के पड़ा न रहा॥३॥
४-दुखदायक हैं सब शत्रु हैं,
यह विषय हैं जितने दुनिया के ।
वही पार हुआ भवसागर से,
जो जाल मे इनके फंसा न रहा ॥४॥
५-यह वेद विरुद्ध जब मत फैले,
पत्थर की पूजा जारी हुई ।
जब वेद की विद्या लोप हुई,
तो ज्ञान का पांव जमा न रहा ॥५॥
६-यहां बड़े बड़े महाराज हुए,
बलवान् हुए विद्वान् हुए ।
पर मौत के पंजे से 'केवल'
कोई रचना मे आके बचा न रहा ॥६॥

———

ब्रह्मयज्ञ अर्थात् सन्ध्या

१-सन्ध्या-शब्द का अर्थ

"सन्ध्या" शब्द के अर्थ-"सन्ध्यायन्ति संधीयते वा परब्रह्म यस्यां सा सन्ध्या" अर्थात् भली प्रकार ध्यान करते हैं, वा किया जाय परमेश्वर का जिस मे वह 'सन्ध्या' है। अतः रात और दिन के संयोग के समय दोनों सन्ध्याओं मे सब मनुष्यों को परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना करनी चाहिये।

२-सन्ध्या सम्बन्धी शास्त्रोपदेश।

सोमं राजानमवसेऽग्निं गीर्भि-र्हवामहे ॥ १ ॥ अ० ३ । २० । ४

हम सब उस सौम्यस्वभाव, राजाधि-राज, ज्ञानस्वरूप परमेश्वर की वेद-

मन्त्रों द्वारा स्तुति करते हुए उपासना करें ॥ १ ॥

योऽन्यां देवतामुपास्ते पशुरेव-
ऌ स देवानाम् ॥२॥ श० १४।४

जो जन परमेश्वर को छोड़ कर किसी और की उपासना करता है वह विद्वानों की दृष्टि मे पशु ही है ॥ २ ॥

तस्मादहो रात्रस्य संयोगे ब्राह्मणः संध्यामुपासीत ॥३॥ षड् विंशब्राह्मण ४ ।५

इस लिये मनुष्य प्रातः तथा सायं दोनों समय सन्ध्या किया करे ॥३॥

उद्यन्तमस्तं येन्तमादित्यमपिध्यायन् ब्राह्मणो विद्वान् सकलं भद्रमश्नुते ॥४॥ तै० २ । २ । २

सूर्य के उदय तथा अस्त होते समय प्रभु का चिन्तन करने वाला बुद्धिमान् मनुष्य सकल प्रकार के कल्याण को प्राप्त करता है ॥४॥

न तिष्ठति तु यः पूर्वां नोपास्ते यस्तु पश्चिमाम् । स शूद्रवद्बहिष्कार्य्यः सर्वस्माद् द्विजकर्मणः ॥५॥

जो जन प्रातः तथा सायंकाल सन्ध्या नही करता, वह शूद्र के समान है, वह सब प्रकार के कामो से बहिष्कृत करने योग्य है । अतः

सध्याँ सकुशोऽहरहरुपासीत ॥६॥

वृहज्जाबालोपनिषद् ७।८

शुद्ध, पवित्र, एकान्त स्थान मे विधिपूर्वक आसन लगा कर प्रति दिन दोनो समय सन्ध्या करनी चाहिये । उस

समय मन की वृत्तियों को चारों ओर से हटा कर गुणगान में लगावें ।

३. सन्ध्या क्यों करनी चाहिये ?

जैसे शरीर के लिये भोजन आवश्यक है, वैसे ही अन्तःकरण की शुद्धि, आत्मिक बल, तथा ईश्वर ज्ञान के लिये सन्ध्या का अनुष्ठान अत्यावश्यक है।

चित्त की स्थिरता, मन की विषय-उपरामता, आत्मोन्नत्ति, मिथ्या अहंकार वा अभिमान के नाश, बुद्धि की सूक्ष्मता तथा तीव्रता के लिये सन्ध्या रूपी ज्ञान गङ्गा मे स्नान अवश्यमेव करना चाहिये ।

४. सन्ध्या कितने काल करें ?

सन्ध्या केवल सायं वा प्रातः दो ही काल करनी चाहिये ।

५. सन्ध्या किस समय करनी चाहिये ?

सन्ध्या प्रातःकाल सूर्योदय से पूर्व, सायंकाल सूर्यास्त होने पर करनी चाहिये। सन्ध्या मे अपनी इच्छा, शक्ति भक्ति, प्रेम तथा श्रद्धानुसार ही समय दिया जावेगा।

६ आसन आदि कैसा हो ?

एकान्त, शुद्ध पवित्र स्थान पर नीरोगता तथा बल के देने वाला आसन लगावे। हिलें जुलें नहीं। हाथ आदि कुछ न हिलावें। यदि मक्खी, मच्छर आदि के बैठने का डर हो तो पतला सा कपडा ऊपर ले लेवे। कृष्ण भगवान् कहते हैं- 'नीचे चौकी ऊपर दर्भासन, उस के ऊपर ऊनी आसन और उस पर निर्मल श्वेत सूती चादर होनी चाहिये। सिर,

गर्दन और रीढ़ की हड्डी तीनों एक सीध में रहें।

७. सन्ध्या समय मुंह किधर करें ?

प्रातःकाल पूर्व तथा सायंकाल पश्चिम की ओर अथवा देश काल के अनुसार जिधर चाहे, कर लें।

सन्ध्या समय मन के विचार ?

"मै पवित्र स्थान को जा रहा हूं। मेरे पास कोई अपवित्र विचार नहीं रहेगा। अब मेरे आत्मा का प्यारे पिता से मेल होगा।" ऐसा शुभ संकल्प धारण करें।

६. सन्ध्या अपनी भाषा में क्यों न करें?

अपनी भाषा मे वह मिठास, अर्थ-विशेषता, दिव्य-दृष्टि, गम्भीरता, भाषा का लालित्य, माधुर्य्य, साधुता तथा असाधारणता नहीं होती, जैसी पवित्र

सुन्दर भगवती वेद वाणी मे होती है।

१०–क्या यह सन्ध्या वैदिक है ?

इस सन्ध्या मे केवल दूसरा और तीसरा मन्त्र वेद का नहीं परन्तु इन जैसे मन्त्र अथर्ववेद १६।६०।२ मे पाये जाते है, इसलिये यह वैदिक है।

एक निवेदन

पाठक महोदय! आजकल प्रायः सारे देश में सन्ध्या का उच्चारण तथा पठन-पाठन दोषयुक्त दिखाई देता है। एक ही बेढङ्गी चाल और स्वर से सर्वत्र इस का आलाप आलापा जाता है। किस शब्द का किस शब्द के साथ सम्बन्ध है ? इसे किसके साथ मिलाकर उच्चारण करना चाहिये ? यह संस्कृत के न जानने तथा योग्य सिखलाने वाले गुरु के

अभाव के कारण कुछ का कुछ और अर्थ का अनर्थ कर दिया जाता है।

(१) इस सन्ध्या मे दो के अतिरिक्त शेष प्रत्येक मन्त्र का ठीक-ठीक प्रमाण दे दिया गया है।

(२) एक मन्त्र चारो वेदों तथा अन्यत्र कहां-कहां पर आया है, यह भी दर्शा दिया गया है।

(३) प्रत्येक मन्त्र का ऋषि, देवता, छन्द तथा स्वर भी दे दिया गया है, जिससे कि मन्त्र का अर्थ तथा छन्दानुसार उच्चारण के लिये, विभाग किया जा सके।

(४) वैदिक कोषों से मिला कर तथा श्री स्वामी दयानन्द जी महाराज कृत "पंच महायज्ञ-विधि" के अनुसार अर्थ ठीक कर दिये गये हैं।

(५) हमे सन्ध्या क्यों तथा किस

समय करनी चाहिये, यह भी वेदादि सत्‌शास्त्रों के प्रमाणों द्वारा ऊपर दर्शा दिया गया है।

(६) अर्थों तथा छन्दों के अनुसार (,) देकर मन्त्रों के उच्चारण की सुगमता के लिये विभाग कर दिया गया है, तथा

(७) मन्त्रों के अर्थ बहुत सुन्दर, रस भरे शब्दो तथा भक्ति सूचक वाक्यों में करने का यत्न किया गया है। इन में से कई एक बातों की ओर अभी तक किसी भी विद्वान् ने इतना ध्यान नहीं दिया था। अस्तु।

सूचना १—जहां पर (,) ऐसा चिन्ह हो, वहां पर ठहरना चाहिये।

ओ३म्

वैदिक-सन्ध्या

आचमन-मन्त्र

ओ३म् । शन्नो देवीरभिष्टय,
आपो भवन्तु पीतये ।
शंयोरभिस्रवन्तु नः ॥१॥

ऋ० १० । ६ । ४ ॥ यजु ३६ । १२ । साम उ० १ । १ । ६ ॥ सा० । पू० प्र० २ । अर्ध० १ ॥ अ० १ । १ । १ ॥ अ० १ । १ । ६ ॥ चारों वेदों मे है ।

ऋग्वेद में—त्रिशिरास् त्वाष्ट्रः सिन्धुद्वीपो वाऽम्बरीषः और यजुर्वेद मे—दध्यङ्ङथर्वणः ऋषि । आपो देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

शब्दार्थ—

ओ३म्—रक्षा करने वाला

शम्—कल्याणकारी

नः—हमारे लिये

देवी—सर्व-प्रकाशक

अभिष्टये—मनोवाञ्छित फल के लिये

आपः—सर्वव्यापक प्रभु

भवन्तु—होवे (होवें)

पीतये—पूर्णानन्द (मोक्ष) प्राप्ति के लिये

शंय्योः—सुख, शान्ति और कल्याण की

अभि—चारों ओर से

स्रवन्तु—धीमी-धीमी वर्षा करे (करें)

नः—हम पर

भावार्थ—

सर्वव्यापक और सर्व प्रकाशक परमेश्वर मन-मागे पदार्थ, सुख, शांति

और पूर्ण-आनन्द तथा मुक्ति की प्राप्ति के लिये हम सब पर कल्याणकारी होवें, और चारों ओर से सुख की वृष्टि करें ॥१॥

इन्द्रिय-स्पर्श

ओ३म् वाक् वाक् । ओं प्राणः प्राणः ओं चक्षुःचक्षुः । ओं श्रोत्रं श्रोत्रम् । ओं नाभिः । ओं हृदयम् । ओं कण्ठः । ओं शिरः । ओं बाहुभ्यां यशोबलम् । ओं करतल करपृष्ठे ॥२॥

शब्दार्थ—

वाक् वाक्—जिह्वा तथा वाणि
प्राणः प्राणः—नासिका तथा श्वासोच्छ्वास
श्रोत्रं श्रोत्रम्—कान तथा श्रवण शक्ति

नाभिः--नाभि (धुन्नी)
हृदयम्—हृदय (दिल)
कण्ठः—कण्ठ (गला)
शिरः—सिर (मस्तिष्क)
बाहुभ्याम्—दोनों भुजाओं से
यशः—कीर्ति
बलम्—शक्ति, पराक्रम,
करतल—हथेली
करपृष्ठे—हाथ का पृष्ठ-भाग
भावार्थ—

परमेश्वर की अपार दया से मेरे मुख मे रसना तथा बोलने की शक्ति; नासिका द्वार तथा सूंघने की शक्ति; दोनों आंखे तथा देखने की शक्ति; कान तथा सुनने की शक्ति मरणपर्य्यन्त विद्यमान रहे। नाभि चक्र ठीक काम करे। हृदय समुद्रवत गंभीर तथा विशाल हो।

गले से मधुर स्वर निकले। सिर ठंडा रहे। भुजायें सदा यश और बल कमाने वाले काम करें। हाथ स्वस्थ रहे। प्रभो! जान बूझ कर दसों इन्द्रियों से पाप कभी न करूं॥२॥

मार्जन-मन्त्र

ओ३म् भूः पुनातु शिरसि ।
ॐ भुवः पुनातु नेत्रयोः ।
ॐ स्वः पुनातु कण्ठे ।
ॐ महः पुनातु हृदये ।
ॐ जनः पुनातु नाभ्याम् ।
ॐ तपः पुनातु पादयोः ।
ॐ सत्यं पुनातु पुनः शिरसि ।
ॐ खं ब्रह्म पुनातु सर्वत्र ॥३॥

शब्दार्थ--

भूः-- जगदाधार, प्राणस्वरूप
पुनातु--पवित्रता देवे (पवित्र करें)
शिरसि—सिर मे
भुवः—दुःख-नाशक
नेत्रयोः—आंखों मे
स्व — सुखस्वरूप, सुखदाता
कण्ठे—गले मे
महः—बडा
हृदये—हृदय मे
जनः—पिता, पालक
नाभ्याम्—नाभि (धुन्नी) मे
तपः—पापियों का दण्डदाता, ज्ञानस्वरूप
पादयोः—पाओं मे
सत्यम्—सत्यस्वरूप, अविनाशी
पुनः—फिर
खम्—आकाश (की भांति)

ब्रह्म—महान् ईश्वर
सर्वत्र—सब स्थान तथा अङ्गों मे

भावार्थ—

प्राणप्रिय परमेश्वर! मेरे सिर को; दुःख दूर कर्ता आंखों को, सुखदाता गले को, सब से बड़ा प्रभु हृदय को, सब का पिता नाभिचक्र को, दुष्टों का सन्तापकारी पैरों की, एक रस फिर सिर को और आकाशवत् सर्वव्यापक पिता सब अङ्गों को पवित्र तथा पुष्ट करे ॥३॥

प्राणायाम-मन्त्र

ओ३म् भूः। ओ३म् भुवः।
ओ३म् स्वः। ओ३म् महः।
ओ३म् जनः। ओ३म् तपः।
ओ३म् सत्यम् ॥४॥

तैत्ति० आ० । प्रपा० १० । अनु० २७।
नारायणोपनिषद् मं० ३५ ॥

शब्दार्थ तथा भावार्थ—

हे सर्वरक्षक प्रभो ! आप प्राण-स्वरूप, दुःखनाशक, सुख-स्वरूप, सब से बड़े, सब के पिता, दुष्टों को दण्ड देने वाले अन्तर्यामी तथा सत्यस्वरूप हैं ॥४॥

सूचना-बल से प्राणवायु को बाहिर निकाल देवें । तब धीरे-धीरे श्वास लेवे । शक्ति के अनुसार इसे भीतर रोके रक्खे । तब शनैः शनैः श्वास बाहिर छोड़ देवे । यह एक प्राणायाम है इसी प्रकार समय, इच्छा तथा शक्ति के अनुसार ३ से ८१ तक प्राणायाम करने का विधान है ।

———

अघमर्षण-मन्त्र

(ईश्वर-रचना-चिन्तन से पापदलन मन्त्र)

ओ३म् ऋतञ्च सत्यञ्चाभी,

द्धात्तपसोऽध्यजायत ।

ततो रात्र्यजायत,

ततः समुद्रो अर्णवः ॥१॥५॥

ऋ०।१०। सू०१९०॥नारायणोप०मं०१३॥ अघमर्षणो माधुच्छन्दसः ऋषिः। भाववृत्तम् देवता । विराडनुष्टुप (७+८+७+६) छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

शब्दार्थ—

ऋतम्—वेद शास्त्र

च—और

सत्यम—स्थूल तथा सूक्ष्म जगत् की

कारण-रूप प्रकृति

अभि—चारों ओर से
इद्धात—प्रकाशस्वरूप से
तपसः— ज्ञानस्वरूप से
अधि + अजायत—उत्पन्न हुई
ततः—उसी से
रात्रि—महा-प्रलय
समुद्रः—भूमिस्थ समुद्र (परमाणुरूप)
अर्णवः—आकाशस्थ मेघ रूप जलसागर

भावार्थ—

उसी ज्ञानमय तथा सब प्रकार से प्रकाशमान् परमात्मा की अनन्त सामर्थ्य से वेद और त्रिगुणात्मक प्रकृति उत्पन्न हुई, उसी की शक्ति से महा-प्रलय तथा सर्वत्र-पृथ्वी तथा आकाश मे जल उत्पन्न हुआ ॥१॥५॥

ओ३म् समुद्रादर्णवादधि,

सम्वत्सरो अजायत ।

अहोरात्राणि विदधद्,

विश्वस्य मिषतो वशी ॥२॥६॥

ऋ०। १०सू०१६०॥नारायणोप० मं० १४॥
अघमर्षणो माधुच्छन्दसः ऋषिः ।
भाववृत्तम् देवता । अनुष्टुप छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

शब्दार्थ—

समुद्रात्—भूमिस्थ समुद्र से
अर्णवात्—आकाशस्थल जल-कोष से
अधि—पीछे
सम्वत्सरः—वर्ष आदि काल
अजायत—उत्पन्न हुआ

अहोरात्राणि—दिन और रात
विदधत्—बनाये
विश्वस्य—जगत् के
मिषतः—सहज स्वभाव से
वशी—वश मे रखने वाले, प्रभु ने

भावार्थ—

सकल संसार को अपने वश में रखने वाले परमात्मा ने अपने सहज-स्वभाव से जलकोष रचने के अनन्तर काल के विभाग, दिन रात तथा वर्ष आदि उत्पन्न करने वाली गति को रचा ॥१॥६॥

ओ३म् सूर्याचन्द्रमसौ धाता
यथापूर्वमकल्पयत्,

दिवंच पृथिवी-

श्रान्तरिक्ष मथो स्वः ।३।७।।

ऋ० १०।१६०।३।। नारायणोप० मं० १४।।
अघमर्षणो माधुच्छन्दस ऋषिः ।
भाववृत्तम् देवता । पाद निचृदनुष्टुप
छन्दः । गान्धारः स्वरः ।।

शब्दार्थ—

सूर्य्या चन्द्रमसौ-सूर्य्य और चन्द्र को
धाता-धारण करने वाले ने
यथापूर्वम्-जैसे पहिले कल्प की सृष्टि में
अकल्पयत्-बनाया
दिवम्-द्यौ-लोक को
पृथिवीम्-भूमि-लोक को
अन्तरिक्षम्-अन्तरिक्ष-लोक को
अथः —और

स्वः—भूमि तथा द्यौ-लोक के बीच के
लोकलोकान्तरों को

भावार्थ—

सारे जगत् को धारण तथा पालन-पोषण करने वाले परमेश्वर ने जैसे पहले कल्प की सृष्टि मे रचना की थी, ठीक उसी प्रकार अब इस कल्प मे भी सूर्य्य और चन्द्र को, अग्निरूपी अपने सर्वोत्तम प्रकाश को, पृथ्वी को, आकाश को, तथा अन्य बीच के लोकों को बनाया है ॥२॥७॥

मनसा परिक्रमा मन्त्रः

ओ३म् प्राची दिग्, अग्निरधिपति-
रसितो रक्षिता, आदित्या इषवः,

तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो, रक्षि-

तृभ्यो नम, इषुभ्यो नम, एभ्यो अस्तु

यो ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस-

तं वो जम्भे दध्मः ॥१॥८॥

अ० ।३॥२६॥१॥ आथर्वणरुद्रः ऋषिः। अग्निः देवता। अष्टिः छन्दः॥

शब्दार्थ—

प्राची—पूर्व अथवा सामने
दिग्—दिशा मे
अग्निः—प्रकाश-स्वरूप परमेश्वर
अधिपतिः—राजा, स्वामी
असितः—बन्धन-रहित
रक्षिता—बचाने वाला
आदित्याः—सूर्य्य की किरणों, विद्वान

इषवः—बाण-रूप
तेभ्यो नमः—उन सब के लिये नमस्कार हो।
अधिपतिभ्यो नमः—स्वामियों के लिये नमस्कार हो।
इषुभ्यो नमः—तीरों के लिये नमस्कार हो
एभ्यो अस्तु—इन सब के लिये (नमस्कार) हो
यः—जो
अस्मान्—हम को
द्वेष्टि—द्वेष (वैर) करता है
यम्—जिसको (से)
वयम्—हम
द्विष्मः—वैर करते हैं
तम्—उसको
वः—आप के
जम्भे—जबड़ेमे (न्याय पर)

दध्मः—रखते हैं (छोड़ते हैं)

भावार्थ—

ज्ञान-स्वरूप परमेश्वर पूर्व-दिशा अथवा सामने की ओर का स्वामी है। वह सर्व प्रकार के बन्धनों से रहित है वही हमारी रक्षा करने वाला है। सूर्य्य की किरणें उसकी रक्षा के साधन हैं। उन सब स्वामियों, रक्षा करने वालों तथा तीर रूप रक्षा के साधनों को बार-बार नमस्कार हो। जो जन अज्ञान-वश हम से वैर करता है, अथवा जिस से हम द्वेष करते हैं उस को आप के जबड़े में रखते हैं ॥१८॥

ओ३म्। दक्षिणा दिग्, इन्द्रोऽधिपतिस्तिरश्चि राजी रक्षिता, पितर इषवः।

तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो,
रक्षितृभ्यो नम, इषुभ्यो नम, एभ्योअस्तु
यो३ऽस्मान् द्वेष्टि, यं वयं द्विष्मस्
तं वो जम्भे दध्मः ॥२॥९॥

अ० ३।२७।२॥ आथर्वण रुद्रः ऋषिः।
इन्द्रः देवता। अष्टिः छन्दः॥

शब्दार्थ—

दक्षिण—दाहिनी
दिक्—दिशा मे
इन्द्रः—परमैश्वर्य-युक्त प्रभु
अधिपतिः—स्वामी
तिरश्चि-टेढ़े स्वभाव तथा चाल वाले
मनुष्य, पशु तथा पक्षी
राजि (जी)-पंक्ति, समूह

रक्षिता-बचाने वाले

पितरः-विद्वान् जन

इषवः-बाण

भावार्थ--

प्रभो ! आप परमैश्वर्य के स्वामी हमारे दक्षिण की ओर भी विराजमान हैं। आप ही हमारे स्वामियों के स्वामी हैं। बुरे स्वभाव वाले मनुष्य तथा टेढ़ी चाल चलने वाले सर्पादि बिना हड्डी के पशुओं से हमारी रक्षा करते हैं, और ज्ञानियों के द्वारा हमें ज्ञान प्रदान करते हैं। उन सब...॥२॥६॥

ओ३म् प्रतीची दिग् वरुणोऽधिपतिः पृदाकूरक्षिताऽन्नमिषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो, रक्षितृभ्यो

नम, इषुभ्यो नम, एभ्यो अस्तु,
योऽस्मान् द्वेष्टि, य वयं द्विष्मस्-
तं वो जम्भे दध्मः ॥३॥१०॥
अ० ३।२७।३॥ आथर्वणरुद्रः ऋषिः।
वरुणो देवता। अष्टिः छन्दः॥

शब्दार्थ

प्रतीची—पश्चिम वा पृष्ठ-भाग
दिग्—दिशा मे
वरुण—सर्वोत्तम, चुनने योग्य
अधिपतिः—स्वामी
पृदाकूः—सर्प, बिच्छू तथा व्याघ्र आदि कुशब्द करने वाले पशु
रक्षिता—रक्षा करने वाला
अन्नम्—अनाज, भोजन,
इषवः—बाण

भावार्थ—

हे सौंदर्य सागर ! आप हमारी पिछली ओर भी विद्यमान है । आप ही हमारे राजाधिराज है । भयङ्कर शब्द करने वाले तथा विषधारी प्राणियों से रक्षा करने वाले है । सर्व प्रकार के अन्न उत्पन्न करके हमारी पालना करते हैं । उन सब……॥३॥१०॥

ओ३म् उदीची दिक्, सोमोऽधिपतिःस्वजो रक्षिता, ऽशनिरिषवः, तेभ्यो नमो, ऽधिपतिभ्यो नमो, रक्षितृभ्यो नम, इषुभ्यो नम, एभ्यो अस्तु, योऽ३ऽस्मान् द्वेष्टि, यं वयं

द्विष्मस्, तं वो जम्भे दध्मः॥४,११॥

अ० ३।२७।४॥

आथर्वण रुद्रः ऋषिः । सोमः देवता

अष्टिः छन्दः ॥

शब्दार्थ—

उदीची—उत्तर अथवा बाईं ।

दिक्--दिशा मे

सोमः—सौम्य, शान्त स्वरूप प्रभु

अधिपतिः—स्वामी

स्वजः-(सु + अज, स्व + जः) भली प्रकार जन्मरहित, स्वयं उत्पन्न होने वाला

रक्षिता—रक्षा करने वाला

अशनिः—बिजली

इषवः - बाण

भावार्थ—

हे सौम्य स्वभाव परमात्मन् ! आप

हमारी बाईं ओर भी व्यापक हैं । आप हमारे परम स्वामी हैं । आप के माता पिता आदि जन्मदाता कोई नहीं । स्वयंभू और हमारे रक्षक है । आप ही विद्युत द्वारा हमारे शरीर मे रुधिर सञ्चालन करके हमे जीवित रखते हैं । ॥४॥११॥

ओ३म् ध्रुवा दिग्, विष्णुरधिपतिः,

कल्माषग्रीवो रक्षिता, वीरुध इषवः,

तेभ्यो नमो, ऽधिपतिभ्यो नमो,

रक्षितृभ्यो नम, इषुभ्यो नम, एभ्योअस्तु

योऽस्मान् द्वेष्टि, यं वयं द्विष्मस्,

तं वो जम्भे दध्मः ॥५॥१२॥

अ० ३। २७२ ।५ ॥ आथर्वण रुद्र ऋषि: । विष्णु: देवता । भूरिक् अष्टि: छन्द: ॥

शब्दार्थ—

ध्रुवा—स्थिर, निश्चल, निचली
दिक्—ओर
विष्णु:—सर्वव्यापक
अधिपति:—स्वामी
कल्माष—चित्र, कृष्ण, तथा चितकबरे हरित रङ्ग वाले
ग्रीवा—गरदन
रक्षिता—रक्षक
वीरुध:—विस्तृत लतायें, वृक्ष
इषव:—बाण

भावार्थ—

हे सर्वत्र व्यापक परमेश्वर! जो हमारे नीचे की ओर है उसमे भी आप व्याप्त

हैं। इधर भी आप ही हमारे स्वामी हैं। हरित रङ्ग वाले वृक्ष आदि ग्रीवा के समान हैं। लता वृक्ष आदि हमारी रक्षा के लिये बाणरूप साधन हैं ॥५॥१२॥

ओ३म्, ऊर्ध्वा दिग् बृहस्पतिरधिपतिः, श्वित्रो रक्षिता, वर्षमिषवः, तेभ्यो नमो, ऽधिपतिभ्यो नमो, रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु, योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥६॥१३॥

अ० ३। २७॥६॥ आथर्वण रुद्रः ऋषिः। बृहस्पतिः देवता। अष्टिः छन्दः।

शब्दार्थ—

ऊर्ध्वा—ऊपर

दिग्–दिशा मे

वृहस्पतिः–वेद शास्त्र रूपी वाणि का तथा सूर्य्य, आकाशादि बड़े-बडे लोकों का पति, स्वामी।

अधिपतिः–अधिराज

श्वित्रः–शुद्धस्वरूप, ज्ञानमय, श्वेत कुष्ट

रक्षिता–स्वामी

वर्षम्–वर्षा

इषवः–बाण

भावार्थ--

हे वेदादि सत्यशास्त्रों तथा लोकों के राजाधिराज, सर्वमहान्, प्रभो ! आप हमारे ऊपर की दिशा मे भी विराजमान् हैं। उधर भी आप ही हमारे स्वामी हैं। आप पवित्र स्वरूप, ज्ञानमय, कुष्टादि

रोगों से भी हमारी रक्षा करने वाले हैं। वृष्टि के विन्दु रक्षा के साधन हैं ॥६।१३॥

उपस्थान मन्त्राः

ओ३म् उद्वयन्तमसस्परि,
स्वः पश्यन्त उत्तरम्।
देवं देवत्रा सूर्यम्,
अगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥१।१४॥

ऋ० ।१।१०।५०॥ य० । २०, २१। २७, १०। ३५, १४। ३८।२४॥ अ ०।७।३।५७॥

प्रस्कण्वः, अग्निः, आदित्या देवा, दीर्घतमा ऋषिः। सूर्य्यो देवता। निचदनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

शब्दार्थ—

उत्-अत्यन्त उत्तम, श्रद्धा से

वयम्-हम

तमसः—अन्धकार से

परि-परे, दूर

स्वः-सुखस्वरूप

पश्यन्तः—देखते हुए

उत्तरम- प्रलय पीछे रहने वाले को

देवम्—सर्वानन्ददाता दिव्य गुण वाले को

देवत्रः—उत्कृष्ट देव को

सूर्य्यम—चराचर के आत्मा प्रभु को

अगन्म—प्राप्त होवें

ज्योतिः—प्रकाश स्वरूप को

उत्तमम—सर्वोत्कृष्ट को

भावार्थ—

हे परम देव परमेश्वर ! आप सर्व संसार के अन्धकार और अज्ञान से परे

है। आप सुख-स्वरूप हैं। नित्यता से प्रलय पीछे रहने वाले हैं। आप अनन्त दिव्य गुणों से युक्त है। महात्माओं और मुमुक्षुओं, तथा भक्तों के आनन्ददाता हैं। आप देवों के देव हैं। आप चराचर के आत्मा हैं। हम आपके सर्वोत्तम तेज को अपने हृदयों मे देखते और अनुभव करते हुए अत्यन्त श्रद्धा और भक्ति से आप को प्राप्त होवें ॥१॥१४॥

ओ३म् उदु त्यं जातवेदसं,

देवं वहन्ति केतवः।

दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥२॥१५॥

ऋ० ।१। ५० । १ ॥ य० । ७, ४१ । ८, ४१। ३३, ३१ ॥ साम । पू० प्र० १ । अर्ध १ ॥ अ० १३, २ । १६, २० । ४७, १३

प्रस्कण्वः ऋषिः । सूर्य्यो देवता ।
गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

शब्दार्थ—

उत्—अच्छी प्रकार से
उ—निश्चय से
त्यम्—उस पूर्वोक्त प्रभु को
जातवेदसम्—चारों वेदों की उत्पत्ति
के कारण रूप, उत्पन्न हुए-हुए
प्रकृति के सकल पदार्थोंको प्राप्त
करने वाले और सकल जगत्
को जानने वाले प्रभु को
देवम्—दिव्य गुणों से युक्त को
वहन्ति—प्रकाशित करती हैं, वा प्राप्त
करते हैं ।
केतवः—किरणों, नानाविध जगत् के
पृथक् पृथक् रचनादि को
बतलाने वाले ईश्वर के गुण,

वेद, पदार्थ तथा पताकाएं

दृशे—देखने के लिये

विश्वाय—सबके लिये

सूर्य्यम्—चराचर के आत्मा प्रभु को

भावार्थ—

जिस महान् शक्ति से सकल ज्ञान के देने वाले चारों वेद उत्पन्न हुए हैं, जो सब पदार्थों को स्वयं प्राप्त है, जो प्रत्येक व्यवहार को जानता है, जो दिव्य गुणों की खान है, जो स्थावर और जङ्गम जगत् का सूत्रात्मा है, उस सर्व शक्तिमान् परमेश्वर को वेद की अद्भुत रचना के ज्ञापक गुण तथा अन्य पदार्थ, लाल-पीली झण्डियों की भांति निश्चय से भली प्रकार दिखाते हैं जिससे कि सब जन देख सकें ॥२।१५॥

ओ३म् चित्रं देवानामुदगादनीकं,

चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः

आ प्रा द्यावा पृथिवी अन्तरिक्ष ँ

सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च स्वाहा।

ऋ०। १ । ११५ ॥ य०। ७। ४२।
१३। ४६ ॥ सा० पू० प्र० ६। अर्थ० ३॥
अ० १३। २। ३५ मं० २० १०७, १४।
आङ्गिरसः कुत्सः विरूपः ऋषिः। सूर्य्यो
देवता। निचृत् त्रिष्टप् छन्दः। धैवतः
स्वरः। भूरिगार्षी त्रिष्टुप् ॥

शब्दार्थ-

चित्रम्- अद्भुत स्वरूप ईश्वर

देवानाम्-दिव्य गुण-युक्त विद्वानो के
हृदयों मे

उदगात्- अच्छी प्रकार से प्राप्त तथा प्रकाशित है

अनीकम्-बलस्वरूप, नेता (युद्धसेना)

चक्षु-प्रकाशक, उपदेशक, विज्ञानमय, विज्ञापक सर्व सत्योपदेष्टा

मित्रस्य-द्रोहरहित मनुष्य सूर्य्यलोक का अथवा प्राण का

वरुणस्य-उत्तम, श्रेष्ठ कमो तथा गुणों मे वर्त्तमान मनुष्य का, जल-लोक, अथवा अपान का

अग्ने--शिल्प-विद्या-विशारद, अग्नि तथा बिजली के रूप, गुण, दाहादि के प्रकाशक मनुष्य का तथा अग्नि का

आ+प्रा-चारों ओर धार करता है

द्यावा-द्यौ लोक को

पृथिवी-भूमि-लोक को

अन्तरिक्षम्-अन्तरिक्ष-लोक को
सूर्य्यः-जड़, चेतन जगत् का सूत्रात्मा
आत्मा-निरन्तर सर्वत्र व्यापक
जगतः-चेतन जगत् का
तस्थुषः-जड जगत् का
च-और
स्वाहा-सुवचन, सत्य वचन, स्वात्म-बुद्धि आहुति।
[सु आहेति वा, स्वा वागाहेति वा, स्वं आहेति वा, स्वाहुतं हविर्जुहोतीति वा। निरुक्त ८। २०]

१. अच्छा, कोमल, मधुर कल्याण-कारी प्रिय वचन सब से सदा बोलना चाहिये।

२. जैसा मन मे वैसा वाणी से बोलना, अर्थात् सदा सत्य बोलना चाहिये।

३. अपने पदार्थ को ही 'अपना' कहना

चाहिये, दूसरे की वस्तु का स्वयं स्वामी नहीं बनना चाहिये।

४. अच्छी प्रकार सामग्री से सदा हवन करना चाहिये।

भावार्थ-

हे सकल जगत् के उत्पत्तिकर्त्ता पिता! आप अद्भुत स्वरूप हैं; विद्वानों के हृदयों में सदा विराजमान हैं। सब दुःखों को तथा काम क्रोधादि शत्रुओं के हनन के लिये आप बल रूप हैं। आपके बिना मनुष्यो को सुखकर और कौन हो सकता है। आप प्राण अपान के सब को मित्र की दृष्टि से देखने वाले, जल और अग्नि विद्या मे निपुण जनों के और सूर्य्यादि लोकों के प्रकाश हो। आप पृथ्वी अन्तरिक्ष और द्यौ लोक आदि सारे जगत् को रचकर सब को

धारण कर रहे हो। आप सर्व-व्यापक अर्थात् चर और अचर जगत् के सूत्रात्मा हो। यह सुन्दर ध्वनि मेरे हृदय-मन्दिर से निकल रही है। आप की दया से हम सब सदा मीठा बोलें और प्रयत्न से अग्निहोत्र आदि यज्ञ किया करें ॥३॥१६॥

ओ३म् तच्चक्षुर्देवहितं
पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्।
पश्येम शरदः शतं
जीवेम शरदः शतꣳ
शृणुयाम शरदः शतं,
प्रब्रवाम शरदः शतम्-

अदीनाः स्याम शरदः शतं,

भूयश्च शरदः शतात् ॥४॥१७॥

ऋ० ७ ६६।१३॥य० । ३६ । २४ ॥

ऋग्वेदे-वसिष्ठः ऋषिः। सूर्य्यो देवता। पुरः उष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वर ॥ यजुर्वेदे-दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः । सूर्य्यो देवता । भूरिग् ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

शब्दार्थ—

तत्—वह प्रसिद्ध जगत्-कर्त्ता

चक्षुः—सर्व-द्रष्टा

देवहितम्—विद्वानों का हितकारी प्रभु

पुरस्तात्—सर्वत्र व्यापक, विज्ञान-रूप

उच्चरत्—प्रलय के पीछे रहने वाला।

पश्येम—हम देखें

शरदः—ऋतु, काल, वर्ष
शतम्—सौ (१००)
जीवेम—हम जीवें
शृणुयाम—हम सुनें
प्रब्रवाम—हम बोलें, उपदेश करें
अदीनाः—स्वतन्त्र (आज़ाद)
स्याम—हम होवें
भूयः—अधिक
च—और
शतात्—सौ (१००) से

भावार्थ—

प्रभो! आप सर्वत्र प्रसिद्ध है। आप सब कुछ देखने वाले हैं। विद्वानों, धर्मात्माओं और अपने सेवकों के कल्याणकारी हैं। आप सृष्टि से भी पूर्व विद्यमान रहने वाले हैं। आप बल-रूप और शुद्ध-स्वरूप है। आप सर्व-व्यापक

और प्रलय पीछे रहने वाले हैं। आप की कृपा से हम सौ वर्ष तक आंखों से देखते रहें। सौ वर्ष तक जीते रहें, सौ वर्ष तक आप के गुणों मे श्रद्धा रखते हुए उनको सुनते, सुनाते और उपदेश करते रहें। आप की उपासना करते हुए सौ वर्ष किसी के आगे दीन हो कर हाथ न फैलावें, दास न रहें, स्वतन्त्र और धनाढ्य बनें। इसी प्रकार सौ वर्ष से अधिक भी आप की अपार दया से जीवें, सुने, बोले और आप के पवित्र ज्ञान, वेद भगवान् को पढ़कर उसका उपदेश करें ॥४॥१७॥

ओ३म् भूर्भुवः स्वः।

तत्सवितुर्वरेण्यं

भर्गो देवस्य धीमहि

धियो यो नः प्रचोदयात् ॥१८॥

ऋ० । ३ ।६२।१०॥ य० । ३।३५, २२।६, ३०।२, ३६।३॥ सा० ।उ० प्र० ६ अर्ध०३, (सा० ३० प्र० ७ मं० १०) ॥ नारायणोपनिषद् मन्त्र ३५॥ सूर्य्योपनिषद्यपि ॥

ऋग्वेदे विश्वामित्रः ऋषिः । सविता देवता । निचृद गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ।

यजुर्वेदे नारायण ऋषि । सविता देवता । देवो वृहतो छन्दः । षड्जःस्वर. । य० ।३६।३ मे यह मन्त्र महा-व्याहृतियों सहित है, अन्यत्र इन से रहित है, तभी वहां (य० ३६।३) मे छन्द देवी

बृहति है, अन्यत्र निचृद् गायत्री है। य०३०।१ मे ऋषि "नारायण" है अन्यत्र "विश्वामित्र" है।

शब्दार्थ—

ओ३म्—सर्वत्र, सदा, सर्वथा रक्षक। यह शब्द अकार, उकार और मकार से बना है। 'अकार' के अर्थ विराट, अग्नि, विश्व। 'उकार' के अर्थ हिरण्य-गर्भ, वायु, तेजस् और 'मकार' के अर्थ ईश्वर, आदित्य, प्राज्ञ हैं। इस एक नाम से प्रभु के अनेक नामों का ग्रहण होता है, अत: यह सर्वोत्तम नाम है।

भूः-प्राणाधार

भुवः-दुःख नाशक

स्वः-सुख स्वरूप, सुखदाता

तत्-वह प्रसिद्ध प्रभु

सवितुः—उत्पन्न करने वाले का

वरेण्यम्—सर्वश्रेष्ठ
भर्गः—शुद्धस्वरूप, पापनाशक
देवस्य—दिव्यस्वरूप का
धीमहि—हम ध्यान करते हैं
धियः—बुद्धियों को
यः—जो
नः—हमारी—
प्रचोदयात्—प्रेरणा करे

भावार्थ--

हे दयालु परमात्मन् ! आप अपनी असीम कृपा से हमारी सदा रक्षा करते हैं। आप ही हमारे जीवनाधार हैं। अपने सेवकों के दुःखों को दूर करके उन को सुख देने वाले हैं। आप सर्वत्र सम्प्रतिष्ठित और सुप्रसिद्ध है। आप सर्वोत्तम, शुद्ध पवित्र और ज्ञानस्वरूप हैं। आप से ही यह सारा जगत् उत्पन्न

हुआ है। आप ही सकल शुभ गुणो की खान हैं। आप का हम प्रतिदिन ध्यान करें और आप हमे विवेकशीलता, धारणावती मेधा, सद्बुद्धि प्रदान करें

समर्पण मन्त्र

ओ३म् नमः शम्भवाय च, मयोभवाय च

नमः शंकराय च, मयस्कराय च,

नमः शिवाय च, शिवतराय च।१९।

य० ।१६।४१।। परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवः 'ऋषिः । रुद्रो देवता। स्वराडार्षी-बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः।

शब्दार्थ—

नमः—नमस्कार हो।

शम्भवाय--कल्याण के स्रोत के लिये

मयोभवाय-सुख के स्रोत के लिये
शङ्कराय-कल्याण कारी के लिये
मयस्कराय-सुखकारी के लिये
शिवाय-कल्याण स्वरूप के लिये
शिवतराय-अत्यन्त मङ्गल-स्वरूप के लिये

भावार्थ—

प्रभो! आप सुख स्वरूप हैं, सर्वोत्तम सुखों के देने वाले है, आप को नमस्कार हो। आप कल्याण के कर्त्ता, मोक्ष-स्वरूप है, आप ही अपने भक्तों को सुख और शान्ति देने वाले और उनको धर्म्म-कार्य्यों मे लगाने वाले है, आप को नमस्कार हो। आप अत्यन्त मङ्गलस्वरूप हैं और धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति कराने वाले हैं, आप को हमारा अत्यन्त नम्रता, परम श्रद्धा और भक्ति

से बार-बार नमस्कार हो ॥१६॥
ओं शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!
प्यारे पिता ! आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक दुःखों अर्थात् इन तीन तापों को दूर करो।

॥ ओं शम् ॥

सन्ध्या पर दो अनोमल पुस्तकें

सन्ध्या के विषय में प्रायः कई शंकायें व कठिनाइयां सुनने मे आती हैं। जहां तक बन सका संक्षेप में इन का वर्णन हम ने कर ही दिया है। फिर भी जो महानुभाव सन्ध्या के वास्तविक गूढ़ रहस्य समझकर आत्मिक आनन्द से तृप्त होना चाहते हों उन्हे निम्नलिखित दो पुस्तकें पढ़नी चाहिएं जो कि अपने विषय में सर्वाङ्ग

संपूर्ण हैं।

१. सन्ध्या रहस्य--पं० चमूपति एम. ए. द्वारा लिखित-सुनहरी जिल्द । मूल्य सात आना ।

२. सन्ध्या योग-लेखक-श्री स्वामी सत्यानन्द जी। मूल्य पांच आना ।
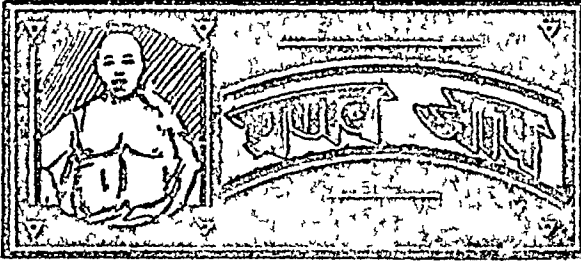
सन्ध्या करने के पश्चात् सबको ओ३म् का जाप करना चाहिये। शास्त्रों में इस की बड़ी महिमा की गई है। श्री स्वामी जी महाराज भी अपनी प्रसिद्ध पुस्तक सत्यार्थ प्रकाश के तीसरे और सातवें समुल्लास मे इस पर बड़ा बल देते हैं। इस से मन की एकाग्रता, सात्विक भाव, शान्ति तथा आनन्द प्राप्त होता है। योग साधन की तत्परता का यह प्रथम अङ्ग है। जितना अधिक समय तथा रुचि होगी उतना ही अधिक योगानन्द की प्राप्ति होगी।

ब्रह्म-स्तोत्र

"प्रणव-जाप" के पश्चात् जितना समय दे सकें, ईश्वर की 'स्तुति' 'प्रार्थना' 'उपासना' करनी चाहिये। परमेश्वर की 'स्तुति' करने से उस मे श्रद्धा उत्पन्न होती है। उस के गुण, कर्म, स्वभाव से अपने गुण कर्म स्वभाव का सुधार होता है। उस की 'प्रार्थना' करने से निरभिमानता, उत्साह तथा सहायता प्राप्त होती है। 'उपासना' से परंब्रह्म से मेल और उसका साक्षात्कार होता है। नीचे कुछ सुन्दर मंत्र तथा श्लोक दिये जाते है, उन्हे गाइये, मन प्रसन्न होगा।

एको वशी सर्वभूतान्तरात्मा,
एकं रूपं बहुधा यः करोति।

तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीराः
तेषा ꣳसुखꣳशाश्वतं नेतरेषाम् ॥१॥

प्रभो! तुम एक हो। सारे ब्रह्माण्ड को वश मे रखने वाले हो। सब प्राणियों के अन्तः करण मे विराजमान हो। एक प्रकृति से नाना प्रकार के पदार्थ उत्पन्न करते हो। जो धीर विद्वान्, योगी आप को अपने आत्मा मे ठहरा हुआ देखते हैं, उन्हीं को सच्चा सुख प्राप्त होता है, दूसरों को नहीं ॥१॥

नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानाम्,
एको बहूनां यो विदधाति कामान्।
तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीराः
तेषां शान्तिः शाश्वती नेतरेषाम् ॥२॥

प्रभो! आप नित्यस्वरूप हैं, चेतनरूप

हैं आप एक हैं। अपने भक्तों की कामनाओं को पूर्ण करने वाले हैं। आप को जो लोग अपने आत्मा के अंदर साक्षात् कर देखते है, उनको वास्तविक तथा निरन्तर शान्ति प्राप्त होती है ॥२॥

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकम्,
नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वम्,
तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ।३।

हे सर्वशक्तिमान् प्रभो! आपके प्रकाश के तुल्य न तो इस सूर्य्य का प्रकाश है, न चन्द्रमा का और न ही अग्नि का। आप के प्रकाश से ही यह सब प्रकाश वाले है। आप प्रकाशस्वरूप हैं ॥३॥

ब्रह्मैवेदममृतं पुरस्ताद्ब्रह्म
पश्चाद्ब्रह्म दक्षिणतश्चोत्तरेण ।

अधश्चोर्ध्वं च प्रसृतं ब्रह्म
एवेदं विश्वमिदं वरिष्ठम् ॥४॥

प्रभो! अप सब से बड़े, नित्यस्वरूप हैं, आप सर्वत्र व्यापक हैं। आगे-पीछे दाएं-बाएं; नीचे-ऊपर सब जगह फैले हुए है। सारे संसार में सब से उत्तम आप ही हैं ॥४॥

इहैव सन्तो ऽथ विद्मस्तद् वयम्,
न चेद्वेदीर्महती विनष्टिः।
ये तद्विदुरमृतास्ते भवन्ति,
अथेतरे दुखमेवापि यन्ति ॥५॥

प्रभो! इसी जन्म के अन्दर यदि हम आप को साक्षात् कर लेवें, तो अच्छी बात है, अन्यथा महान् अनर्थ होगा। जो जन आप को जान जाते हैं वह

अमर हो जाते हैं और दूसरे दुःख के भागी बनते हैं ॥५॥

अपाणिपादो जवनो ग्रहीता,
पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः ।
स वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता,
तमाहुरग्र्य पुरुषं महान्तम् ॥६॥

प्रभो! आपके न हाथ हैं न पांव हैं, परन्तु सब को ग्रहण करने वाले हैं, और सब से अधिक वेग वाले हैं, आप की आंखे नहीं, परन्तु देखते सब कुछ है । आप के कान नही परन्तु सुनते सब कुछ हैं । आप सब को जानते हैं, परन्तु आप का अन्त जानने वाला कोई नहीं । आप ही सब के नेता महाप्रभु, सर्वशक्तिमान् हैं ॥६॥

ब्रह्माण्ड को घेरे हुए हैं । आपको जान कर ही हम सच्ची शान्ति को प्राप्त कर सकते हैं ॥८॥

स एव काले भुवनस्य गोप्ता,
विश्वस्याधिपः सर्वभूतेषु गूढः ।
यस्मिन् युक्ता ब्रह्मर्षयो देवाश्च,
तमेव ज्ञात्वा मृत्युपाशांश्छिनत्ति ॥९॥

सर्वपालक प्रभो ! आप ही समय पर सब की रक्षा करने वाले हैं । आप ही सब के स्वामी हैं । आप सब प्राणियो के अन्दर गुप्त हैं । आप को ही ऋषि मुनि योगाभ्यासी जान कर मृत्यु के जाल को काट सकते हैं ॥६॥

एष देवो विश्वकर्मा महात्मा,
सदा जनानां हृदये सन्निविष्टः ।

हृदा मनीषी मनसाऽभिक्लृप्तो,
य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥१०॥

दिव्य स्वरूप! आप ही सकल जगत् को बनाने वाले हैं। आप सर्वमहान् सदा सब के हृदयों में रहने वाले हैं। जो बुद्धिमान हृदय और मन से आप की खोज करते हैं, वह अमर पद को पा जाते हैं ॥१०॥

न संदृशे तिष्ठति रूपमस्य,
न चक्षुषा पश्यति कश्चनैनम् ।
हृदा हृदिस्थं मनसा य एनं,
एवं विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥११॥

निराकार प्रभो! आप का कोई रूप नहीं, आपको इन आंखों से कोई नहीं देख सकता। जो हृदय में आपको मन द्वारा जानते हैं, वही अमर हो जाते हैं ॥११॥

न तस्य कार्य्य करणं च विद्यते,
न तत्समश्चाभ्याधिकश्च दृश्यते ।
पराऽस्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते,
स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च ॥१२॥

प्रभो ! आप स्वयं सब काम कर सकते हैं। दूसरे की सहायता की आप को आवश्यकता नही पडती । आपके तुल्य इस संसार मे कोई नहीं, तो आप से अधिक कौन हो सकता है । जो आप की अद्भुत शक्ति है, नाना प्रकार से वह प्रकट हो रही है । आप मे ज्ञान, बल तथा काम करने की शक्ति स्वभाव से ही है ॥१२॥

एको देवः सर्वभूतेषु गूढः,
सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा ।

कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः,
साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च ॥१३॥

प्रभो! आप एक हैं, दिव्य-स्वरूप हैं, सब में व्यापक हैं, सबको कर्मों का फल देने वाले हैं। सर्वद्रष्टा हैं, केवल सुख-रूप, चेतनस्वरूप और निर्गुण है ?॥१३॥

नमस्ते सते ते जगत्कारणाय,
नमस्ते चिते सर्वलोकाश्रयाय।
नमोऽद्वैततत्त्वाय मुक्तिप्रदाय,
नमो ब्रह्मणे व्यापिने शाश्वताय ॥१४॥

हे सदा रहने वाले, जगत् के कारण, प्रभो! तुझे नमस्कार हो। सर्वलोक के आश्रय! चेतनस्वरूप, तुझे प्रणाम हो। सुखस्वरूप मुक्ति के दाता! तुझे हम नमस्कार करते हैं। हे सर्व व्यापक,

परम ब्रह्म ! तुझे हमारा बार-बार प्रणाम हो ॥१४॥

त्वमेकं शरण्य त्वमेकं वरण्यं;
त्वमेकं जगत्पालकं स्वप्रकाशम् ।
त्वमेकं जगत्कर्तृ पातृ प्रहर्तृ,
त्वमेकं परं निश्चलं निर्विकल्पम्॥ १५॥

प्रभो ! आप ही हमारी रक्षा करने वाले हो, आप ही श्रेष्ठ हो, आप ही जगत् के पालक और स्वप्रकाशक हो। परमात्मन्! आप ही अकेले जगत् के कर्त्ता, रक्षक और संहारकर्त्ता हैं। आप ही एक सब से बड़े, अचल और विकार रहित है ॥१५॥

भयानाँ भयं भीषणं भीषणानां,
गतिः प्राणिनां, पावनं पावनानाम् ।

महौच्चैः पदाणां नियन्तृ त्वमेकं,

परेषां परं रक्षणं रक्षणानाम् ॥१६॥

परमात्मन्! आप भयो को भय देने वाले हैं। भीषणो को भी डराने वाले हैं। आप ही हमारी गति हैं। पवित्रों के पवित्रकर्त्ता आप हैं। आप महाराज के महाराज है, पर से भी परे हैं, और रक्षा करने वालों के भी रक्षक हैं ॥१६॥

वयं त्वां स्मरामो, वयं त्वां भजामो,

वयन्त्वां जगत्साक्षिरूपं नमामः।

सदेकं निधानं निरालम्बमीशम्,

भवाम्भोधिपोतं शरण्यं व्रजामः॥१७॥

परमात्मन्! हम आप का ही स्मरण करते रहे। आपका ही भजन करें। हम आपको ही सब का साक्षी जान कर

पूजें। आप एक हैं। आप सब के आधार हैं और अपने आधार भी स्वयं ही हैं। संसार रूपी समुद्र मे रक्षा करने वाले पोत (जाहज़) आप ही हैं। हे प्रभो! हम आपको ही प्राप्त हों ॥१७॥

न तस्य कश्चित् पतिरस्ति लोके,
न चेशिता नैव च तस्य लिङ्गम।
स कारणं करणाधिपाधिपो,
न चास्य कश्चित् जनिता न चाधिप।१८।

परमात्मन्! आपका इस लोक मे कोई पालक नहीं, न कोई शासक है। न ही आपकी मूर्ति है। आप कारणो के भी कारण हैं। न कोई आपका उत्पादक है, न ही कोई आप का स्वामी है ॥१८॥

तमीश्वराणां परमं महेश्वरम,

तं देवतानां परमं हि देवतम ।
पतिं पतीना परमं परस्ताद्,
विदाम देवं भुवनेशमीडयम ॥१९॥

प्रभो! आप महेश्वरों के भी महेश्वर हो। देवताओं के भी आप पूजनीय देव हो आप पतियों के भी अधिपति हो। हे सर्व जगत् के शासक! हम आप की स्तुति तथा उपकारों का गान और चिन्तन सदा करते ही रहे ॥१९॥

त्वमेव माता च पिता त्वमेव,
त्वमेव वन्धुश्च सखा त्वमेव ।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव,
त्वमेव सर्वं मम देव देव ॥२०॥

भगवन्! आप ही हमारे माता, पिता

हो, आप ही हमारे बन्धु और सखा हो। स्वामिन्! आप ही हमारी विद्या तथा धन हो। हे नाथ! आप ही मेरे सर्वस्व हो और आप ही मेरे पूजनीय उपास्य देव हो। आपके स्थान में किसी अन्य का भूल कर भी मै कभी पूजन न करूं ॥२०॥

प्रार्थना भजन न० १

१-उठ जाग मुसाफ़िर भोर भई ।
अब रैन कहां जो सोवत है ॥
जो जागत है सो पावत है ।
जो सोवत है सो खोवत है ॥
२-टुक नींद से आंखें खोल ज़रा ।
और अपने ईश से ध्यान लगा ॥
यह प्रीत करन की रीत नहीं ।
प्रभु जागत है तू सोवत है ॥
३-जो अज करना है अब कर ले ।
जो कल करना है अज कर ले ॥
जब चिड़ियों ने चुग खेत लिया ।
फिर पछताये क्या होवत है ॥
४-नादान भुगत करनी अपनी ।
ए पापी पाप मे चैन कहां ॥
जब पाप की गठरी सीस धरी ।
फिर सीस पकड़ क्यों रोवत है ॥

भजन नं० ३

१-करो हरि नैय्या मेरी पार।
तुम बिन कौन बचावन हार,
यह जग पारावार ॥
२-पाप प्रलोभन इंजिन भगवन,
खींचि करी मंझदार ॥
३-मन केवट माया के मद मे,
घेरा पंच मकार ॥
४-ढीली पडी सुरत की डोरी,
स्वामिन् तुम्हे बिसार ॥
५-बार बार टकरत दु:सह दु:ख,
टूट गया पतवार ॥
६-नाव पुरानी झांझरि हो गई,
क्षण मे डूबन हार ॥
७-बल्ली हाथ गहो करुणाकर,
पार करो कर्त्तार ॥

भजन नं ४

पिता जी तुम पतित उद्धारन हार-टेक

१-दीन शरण कंगाल के स्वामी,
दुःख के मोचन हार ॥१॥

२-इस जग माया जाल भ्रमण में,
सूझे न सार-असार ॥२॥

३-सत्य-ज्ञान बिन अंध सम डोलें,
करें असत्य आचार ॥३॥

४-पाप प्रवाह भयंकर जल मे,
डूबत है मंझधार ॥४॥

५-तुमरी दया बिन को समरथ है,
करे दीनन को पार ॥५॥

—(ओं)—
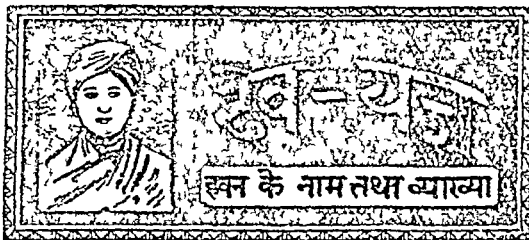
१—हवन के नाम तथा व्याख्या

हवन का नाम 'होम' 'अग्निहोत्र' और 'देवयज्ञ' भी है। हवन का अर्थ 'दान' है। जिस कर्म से अग्नि (ज्ञान-स्वरूप परमेश्वर) की आज्ञा-पालन करने के लिये भौतिक अग्नि में सुगन्ध आदि पदार्थों का दान किया जाता है, वह कर्म 'हवन' कहाता है। जिन मन्त्रों से हवन किया जाता है, वह 'हवन मंत्र' कहलाते हैं।

प्रातः और सायं काल तथा आनन्दो-

त्सवों पर हवन करना सब मनुष्यों का कर्तव्य है। हवन करने से संसार मे बुद्धि, वृद्धि, शूरता, धीरता तथा उत्तम स्वस्थता फैलती है।

२—अग्नि-होत्र का महत्व

कुर्वन्नेह कर्माणि,
जिजीविषेच्छतꣳ समाः ॥१॥

मनुष्य को चाहिये, कि कर्तव्य कर्मों को करता हुआ ही सौ वर्ष की पूर्ण आयु भर जीने की कामना करे ॥१॥

अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा,
विद्ययाऽमृतमश्नुते ॥२॥

मनुष्य कर्म द्वारा मृत्यु को पार कर के विद्या द्वारा अमृत को प्राप्त कर सकता है ॥२॥

सायँ सायँ गृहपतिर्नो अग्निः
प्रातः प्रातः सौमनस्य दाता ॥३॥

सब घरों मे सायं तथा प्रातः दोनों समय परमेश्वर तथा भौतिक अग्नि की प्रतिष्ठा होवे ॥३॥

सायँ प्रातस्तु जुहुयात्,
सर्वकालमतन्द्रितः ॥४॥

सदा सायं प्रातः हवन करना चाहिये ॥४॥

अग्निहोत्रं जुहुयात् स्वर्गकामः ॥५॥

स्वर्ग की कामना करने वाला मनुष्य होम किया करे ॥५॥

स्वाध्याय नित्ययुक्तःस्याद्,
दैवे चैवेह कर्माणि ।
देवकर्मणि युक्तो हि,
विभर्त्तीदं चराचरम् ॥६॥

मनुष्य को चाहिये कि स्वाध्याय और देव-यज्ञ मे नित्य लगा रहे । देवयज्ञ मे लगा हुआ जड़ और चेतन दोनों प्रकार के जगत् को वह धारण करता है ॥६॥

अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यग्,
आदित्यमुपतिष्ठते
आदित्याज्जायते वृष्टि-
वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः ॥७॥

अग्नि में डाली हुई आहुति भली भांति से सूर्य्य को प्राप्त होती है। सूर्य्य से वर्षा होती है, वर्षा से अन्न होता है और फिर प्रजायें होती हैं ॥७॥

अग्निहोत्रं सायंप्रातःगृहाणां निष्कृतिः
स्विष्टं सुहुतं यज्ञक्रतूनां परायणं,

स्वर्गस्य लोकस्य ज्योतिः ॥८॥

सायं-प्रातः अग्निहोत्र घरों की शुद्धि करने वाला है। श्रद्धापूर्वक सम्पूर्ण किया हुआ यज्ञ, यज्ञों और ऋतुओं की पराकाष्ठा है। यज्ञ स्वर्ग-लोक की ज्योति है ॥८॥

नौर्हि वा एषा स्वर्ग्या।

यदाग्निहोत्रं ॥९॥

जो अग्निहोत्र है, वह निश्चय करके स्वर्ग को प्राप्त कराने वाली नौका है ॥९॥

अग्नि होत्रं च स्वाध्याय

प्रवचने च ॥ १० ॥

अग्निहोत्र और स्वाध्याय तथा उपदेश भी सब मनुष्यों को करना चाहिये ॥१०॥

अन्नाद्भवन्ति भूतानि,

पर्जन्यादन्न संभवः
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो,
यज्ञः कर्मसमुद्भवः ॥१३॥

अन्न से समस्त प्राणी उत्पन्न होते हैं, अन्न मेघ से पैदा होता है। मेघ यज्ञ से उत्पन्न होता है, और यज्ञ कर्म से उत्पन्न होता है ॥११॥

अहन्यहनि ये त्वेता-
नकृत्वा भुञ्जते स्वयम्।
केवलं मलमश्नन्ति
ते नराः न च संशयः ।१२।

प्रति दिन जो इन अग्निहोत्र आदि महायज्ञों को किये विना स्वयं अन्नादि खाते-पीते हैं, वे मनुष्य केवल 'मल' खाते हैं इस मे संशय नहीं ॥१२॥

३. यज्ञ-देश

यह स्थल पवित्र तथा शुद्ध होना चाहिये, जहां पर्याप्त वायु आ सके।

४. यज्ञ-देश

यह यज्ञ-मण्डप पक्का बनवा रखना चाहिये।। ऊपर ध्वजा लहरावे। वेदी प्रतिदिन गोमय से लेपी जावे। हल्दी आदि से चित्रित हो।

५. यज्ञ कुण्ड का परिमाण

आहुतियों के परिमाण के अनुसार छोटा बड़ा होना चाहिये। चौरस, ऊपर से चारगुणा, नीचे से चौथाई रख कर बना लो, अथवा बना हुआ ले लो।

६. यज्ञ-समिधा

पलाश (ढाक), शमी (जंड) पीपल, बड़ गूलर, आम, बिल्व आदि की सूखी हुई

बिना कीड़े के समिधा वर्तनी चाहिये।

७. सामग्री

सामग्री चार प्रकार की-सुगन्धित, पुष्टि कारक, मिष्ट और रोगनाशक होनी चाहिये।

१.-बसन्त-छलीरा, तालीसपत्र, पत्रज, दाख, लज्जावती, शीतल-चीनी, कपूर, चीढ़, देवदारु, गिलोय, अगर, तगर, केशर, इन्द्रजौ, गुग्गुल, कस्तूरी, तीनो-चन्दन, जावित्री, जायफल, धूप, सरसों पुष्कर-मूल, कमलगट्टा, मजीठ, वनक-चूर, तारचीनी, गूलर की छाल, तेजफल, शङ्खपुष्पी, चिरायता, खस, गोखरू खांड, गो-घृत, ऋतुफल, भात वा मोहन भोग, जंड की समिधा।

२-ग्रीष्म-मुरा, वायविडिंग, कपूर,

चिरौंजी, नागर मीथा, पीला चन्दन, छलीग, निर्मली, शतावर, खस, गिलोय, धूप, दारचीनी, लौंग, कस्तूरी, चन्दन, तगर, भोजपत्र, भात, कुश की जड़, तालीसपत्र, पद्माख, दारुहल्दी, लाल-चन्दन, मजीठ, शिलारस, केशर, जटा-मांसी, नेत्रबाला, इलायची बडी, उन्नाब, आमले, मूंग के लड्डू, ऋतुफल, चन्दन-चूरा।

३-वर्षा-काला अगर, पीला अगर, जौं, चीढ़, धूप, सरसों, तगर, देवदारू, गुग्गुल नकछिकनी, राल, जायफल, मुंडी, गोला, निर्मली, कस्तूरी, मखाने, तेजपत्र, कपूर, वनकचूर, बेल, जटामांसी, छोटी इलायची, वच, गिलोय, तुलसी के बीज वायविडिंग, कमलडन्डी, शहद, चन्दन श्वेत का चूरा, ऋतुफल, नागकेशर,

ब्राह्मी, चिरायता, उड़द के लड्डू, छुहारे, शङ्खाहुली, मोचरस, विष्णुक्रांता, गोघृत, खांड, भात। वर्षा ऋतु मे अन्न सामग्री मे नहीं डालना चाहिये। इस से सामग्री मे कृमि पड़ जाते हैं। कृमियुक्त सामग्री की आहुति देने की अपेक्षा हवन न करना ही अच्छा है।

४-शरद्-चन्दन श्वेत, लाल और पीला, गुग्गुल, नाग केशर, इलायची बड़ी, गिलोय, चिरौंजी, विदारीकन्द, गूलर, की छाल, ब्राह्मो, दारचीनी, कपूर-कचरी, मोचरस, पित्तपापड़ा, अगर, भारङ्गी, इन्द्रजौ, रेणुका, मुनक्का, असगन्ध, शीतलचीनी, जायफल, पत्रज, चिरायता, केशर, कस्तूरी, किशमिश, खाण्ड, जटामांसी, तालमखाना, सहदेवी, ढाक की समिधा, धान की खील, खीर

विष्णुकान्ता, कपूर, ऋतुफल, गोघृत ।

५-हेमन्त-कुन्द, मूसली, गन्धकोकिला, मुड़वाच्छ, पित्तपापड़ा, कपूर-कचरी, नकछिकनी, गिलोय, पटोलपत्र, दार-चीनी, भारङ्गी, सौंफ, मुनक्का, कस्तूरी, चीढ़, गुग्गुल, अखरोट, रासना, शहद, पुष्करमूल, केशर, छुहारे, गोखरू, कौञ्च के बीज, कांटेदार गिलोय, पर्पटी, बादाम, मुलहठी, काले तिल, जावित्री लाल चन्दन, मुश्कबाला, तालीस पत्र, रेणुका, गरी, बिना लवण की खिचड़ी देवदारु ॥

६-शिशिर-अखरोट, कचूर, वायवि-ड़िंग, गुड़, मुंडी, मोचरस, गिलोय, मुनक्का, रेणुका, काले तिल, कस्तूरी, तेजपत्र, केशर, चन्दन, चिरायता, छुहारे, पुलसी

के बीज, गुग्गुल, चिरौंजी, काकड़ा-सिंगो, खाण्ड, शतावर, दारुहल्दी, शङ्खपुष्पी; पद्माख, कौञ्च के बीज, जटामांसी, भोजनपात्र, मोहनभोग (हलवा)

बसन्त = चैत्र, वैशाख। मार्च, अप्रैल।

ग्रीष्म = ज्येष्ठ, आषाढ़। मई. जून।

वर्षा = श्रावण, भद्रपद्र, जुलाई, अगस्त।

शरद् = आश्विन, कार्तिक, सितं०, अग०।

हेमन्त = मार्गशीर्ष, पौष। नव०, दिस०।

शिशिर = माहे, फाल्गुण। जनवरी फर०।

८. यज्ञ-घृत

गाय अथवा भैस का ताज़ा स्वच्छ, छना हुआ होना चाहिये। हो सके तो कस्तूरी आदि पदार्थ बीच में डाल लो।

९. स्थाली-पाक

खिचड़ी, हलवा आदि भी बना लो।

१०. यज्ञ-पात्र

शक्ति तथा इच्छानुसार सोने, चान्दी, तांबे, लोहे वा लकड़ी के होने चाहियें, १-घृत-पात्र, २-सामग्री-पात्र, ३-आचमन-पात्र, ४-जलपात्र, ५-स्रवा, ६-जल छिडकने का पात्र, ७-शेष रखने का पात्र, ८-चिमटा, ९-पखा, १०-हवनकुण्ड

ईश्वर-स्तुति प्रार्थनोपासना मन्त्र

ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव । यद्भद्रं तन्न आसुव ।१।

अर्थ—हे सकल जगत् के उत्पत्तिकर्ता, समग्र ऐश्वर्ययुक्त, शुद्धस्वरूप, सर्व सुखों के दाता परमेश्वर! आप कृपा कर के

हमारे सम्पूर्ण दुर्गुण, दुर्व्यसन और दुःखों को दूर कीजिये। जो कल्याण-कारक गुण, कर्म, स्वभाव वाले पदार्थ हैं, वे सब हम को प्राप्त कराईये ॥१॥

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे, भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्, स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां, कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥२॥

अर्थ– जो स्वप्रकाशरूप और जिसने प्रकाश करने हारे सूर्य, चन्द्रमा आदि पदार्थ उत्पन्न करके धारण किये हैं, जो सम्पूर्ण जगत् का प्रसिद्ध स्वामी चेतन रूप है, जो सब जगत् से पूर्व वर्तमान था, जो इस भूमि सूर्यादि को धारण कर रहा है हम लोग उस सुख-

स्वरूप परमात्मा की योगाभ्यास और अति प्रेम से विशेष भक्ति किया करें ॥२॥

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व
उपासते प्रशिषं यस्य देवाः।
यस्य च्छायाऽमृतं यस्य मृत्युः,
कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥३॥

जो आत्मज्ञान का दाता; शरीर, आत्म, समाज के बल का देने हारा, जिसकी सब विद्वान लोग उपासना करते हैं और न्याय अर्थात् शिक्षा को मानते हैं, जिसका आश्रय ही मोक्ष सुखदायक है जिसका न मानना अर्थात् भक्ति न करना ही मृत्यु आदि दुःख का हेतु

है, हम लोग उस सुखस्वरूप, सकल ज्ञान के देने हारे परमात्मा की प्राप्ति के लिये आत्मा और अन्तःकरण से भक्ति अर्थात् उसी की आज्ञा-पालन करने में तत्पर रहें ॥३॥

य॒: प्रा॑ण॒तो नि॑मिष॒तो म॑हि॒त्वै-
क॒ इद्राजा॒ जग॑तो ब॒भूव॑। य ईशे॑
अ॒स्य द्वि॒पद॒श्चतु॑ष्पदः, कस्मै॑
दे॒वाय॑ ह॒विषा॑ विधेम ॥४॥

अर्थ—जो चेतन और जड़ जगत् का अपनी अनन्त महिमा से एक ही राजा है, जो मनुष्य और गौ आदि प्राणियों के शरीर की रचना करता है, उस सुखस्वरूप, सकलैश्वर्य के देने हारे

परमात्मा की हम अपनी सकल उत्तम सामग्री से विशेष भक्ति करे ॥४॥

येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढा, येन स्वः स्तभितं येन नाकः । यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः, कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥५॥

अर्थ—जिस परमात्मा ने तीक्ष्ण स्वभाव वाले सूर्य और भूमि को धारण किया है, जिस जगदीश्वर ने दुःख-रहित मोक्ष का धारण किया है, जो आकाश में सब लोक-लोकान्तरों मे पक्षी उड़ते है, वैसे सब लोकों का निर्माण कराता और भ्रमण कराता है, हम लोग उस सुखदायक, कामना करने के योग्य,

परब्रह्म की प्राप्ति के लिये, सब सामर्थ्य से विशेष भक्ति करें ॥५॥

प्रजापते ! न त्वदेतान्यन्यो, विश्वा जातानि परिता बभूव । यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु, वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥६॥

अर्थ—हे सब प्रजा के स्वामिन् परमात्मन् ! आप से भिन्न दूसरा कोई इन सब उत्पन्न हुए जड़, चेतनादिकों का तिरस्कार नहीं कर सकता है, अर्थात् आप सर्वोपरि है । जिस-जिस पदार्थ की कामना वाले हम लोग आप का आश्रय लेवे और इच्छा करे, वह २ हमारी कामना सिद्ध होवे, जिस से

हम लोग धनैश्वर्य के स्वामी होवें ॥६॥

स नो बन्धुर्जनिता स विधाता,

धामानि वेद भुवनानि विश्वा ।

यत्र देवा अमृतमानशानास् तृतीये

धामन्नध्यैरयन्त ॥७॥

अर्थ—हे मनुष्यो ! वह परमात्मा हम लोगों को भ्राता के समान सुखदायक, सकल जगत् का उत्पादक, सब कामों को पूर्ण करने हारा, लोक और उनके नाम, स्थान तथा उत्पत्ति आदि को जानता है और जिस सांसारिक दुःख-सुख से रहित, नित्यानन्दयुक्त, मोक्ष स्वरूप धारण करने हारे परमात्मा मे, मोक्ष को प्राप्त होके, विद्वान् स्वेच्छा

पूर्वक विचरते हैं, वही परमात्मा अपना गुरु, आचार्य, राजा और न्यायाधीश है हम लोग मिल कर सदा उसकी भक्ति किया करें ॥७॥

अग्ने ! नय सुपथा राये अस्मान्,
विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो, भूयिष्ठान्ते
नम उक्तिं विधेम ॥८॥

अर्थ—हे स्वप्रकाश ! ज्ञानस्वरूप, सब जगत् के प्रकाश करने हारे ! सकल सुखदाता परमेश्वर ! आप जैसे सम्पूर्ण विद्यायुक्त हैं, कृपा करके हम लोगों को विज्ञान राज्यादि, ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये अच्छे धर्मयुक्त आप्त लोगों के

मार्ग से सम्पूर्ण प्रज्ञान और उत्तम कर्म प्राप्त कराइये, और हम से कुटिलता-युक्त पाप रूप कर्म को दूर कीजिये। इस कारण हम लोग आप की बहुत प्रकार की स्तुति सदा किया करे और सर्वदा आनन्द मे रहे ॥८॥

— —

अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य
देवमृत्विजम् होतारं रत्नधातमम् ॥ १ ॥

पहिले से ही जगत् को धारण करने वाले, हवन, विद्यादि दान और शिल्पक्रिया के प्रकाशक, प्रत्येक ऋतु मे पूजनीय, जगत् के सुन्दर पदार्थों को देने वाले, रमणीय रत्नादिकों के पोषण करने वाले की मैं (उपासक) स्तुति करता हूं ॥ १ ॥

स नः पितेव सूनवे ऽग्ने सूपा-
यनो भव । सचस्वा नः स्वस्तये ।२।

हे ज्ञानस्वरूप परमेश्वर ! जैसे पुत्र के लिये पिता ज्ञानदाता होता है, वैसे आप हमारे लिये सुख के हेतु पदार्थों की प्राप्ति कराने वाले होवें ।।२।।

स्वस्ति नो मिमीतामश्विना भगः,
स्वस्ति देव्यदितिरनर्वणः । स्वस्ति
पूषा असुरो दधातु नः, स्वस्ति
द्यावापृथिवी सुचेतुना ।। ३ ।।

हे ईश्वर ! अध्यापक और उपदेशक हमारा कल्याण करें, वायु सुख का

सम्पादन करे, अखण्डित प्रकाशवाली
विद्युत्-विद्या हमारा कल्याण करे।
पुष्टिकारक मेघादि कल्याण करें।
अन्तरिक्ष और पृथ्वी हमारे लिये
कल्याणकारी हों ॥३॥

स्वस्तये वायुमुप ब्रवामहै, सोमं
स्वस्ति भुवनस्य यस्पतिः ।
बृहस्पतिं सर्वगणं स्वस्तये, स्व-
स्तय आदित्यासो भवन्तु नः ॥४॥

हे परमेश्वर ! शान्ति के लिये हम
वायु-विद्या का उपदेश और ऐश्वर्य
देने वाले चन्द्रमा की स्तुति करते हैं-
जो चन्द्रमा औषधादि रस का उत्पा-
दक होने से संसार की रक्षा करने

वाला है। कर्मों के रक्षक ! आप का अपने कल्याण के लिये, हम आश्रय लेते हैं ॥४॥

विश्वे देवा नो अद्या स्वस्तये
वैश्वानरो वसुरग्निः स्वस्तये।
देवा अवन्त्वृभवः स्वस्तये,
स्वस्ति नो रुद्रः पात्वंहसः ॥५॥

आज यज्ञ के दिन हमारे आनन्द के लिये सब विद्वान् लोग और दिव्य पदार्थ वर्तमान हो। सर्वत्र बसने वाला अग्नि मङ्गलकारी हो। हमारे कल्याण के लिये, दुष्टों को रुलानेवाले आप पाप रूप अपराध से हमारी रक्षा करो ॥५॥

स्वस्ति मित्रावरुणा, स्वस्ति पथ्ये रेवति। स्वस्ति न इन्द्रश्चाग्निश्च, स्वस्ति नो अदिते कृधि ॥६॥

हे परमेश्वर! हमारा वायु और विद्युत् कल्याण करें। शुभ धनादि सम्पन्न मार्ग हमारे लिये कल्याणकारी हों। प्राण और अपान वायु हमारे लिये कल्याणकारी हों ॥६॥

स्वस्ति पन्थामनु चरेम, सूर्या-चन्द्रमसाविव। पुनर्ददताघ्नता, जानता सङ्गमेमहि ॥ ७ ॥

हे ईश्वर! कल्याण के मार्ग मे आनन्द से हम लोग विचरें, जैसे सूर्य और चंद्र

बिना किसी उपद्रव के विचरते हैं। सहायक, दुःखनाशक और ज्ञान-सम्पन्न के साथ हम मेल करें ॥७॥

ये देवानां यज्ञिया यज्ञियानां,
मनोर्यजत्रा अमृता ऋतज्ञाः ।
ते नो रासन्तामुरुगायमद्य, यूयं
पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥८॥

जो आप विद्वानों मे यज्ञोपयोगी हैं, और मननशील, सत्यज्ञानी है, वे आप लोग विद्या के उपदेश हमे देवें और कल्याणकारी पदार्थों से हमारी रक्षा किया करें ॥८॥

येभ्यो माता मधुमत्पिन्वते पयः,

पीयूषं द्योरदितिरद्रिबर्हाः ।

उक्थशुष्मान् वृषभरान्त्स्वप्नसस्तां,

आदित्यां अनुमदा स्वस्तये ॥९॥

जिन विद्वानों के लिये, सब को निर्माण करने वाली पृथ्वी, मीठे दुग्धादि पदार्थ देती है, और अखण्डनीय मेघों से बढ़ा हुआ अन्तरिक्ष लोक सुन्दर जल देता है, अत्यन्त बल वाले यज्ञ द्वारा वृष्टि करने वाले उनको उपद्रव न होने के लिये प्राप्त कराइये ॥६॥

नृचक्षसो अनिमिषन्तो अर्हणा,

बृहद्देवासो अमृतत्वमानशुः ।

ज्योतीरथा अहिमाया अनागसो,

दिवो वर्ष्माणं वसते स्वस्तये ॥१०॥

मनुष्यों के द्रष्टा, आलस्य रहित लोगों के पूजनीय विद्वान् लोग हैं, जो कि अमर पद को प्राप्त हो चुके है, जो सुन्दर प्रकाशमय रथों से युक्त हैं, जिनकी बुद्धि को कोई दबा नही सकता, ऐसे पाप रहित विद्वान् जो कि अन्तरिक्ष लोक के ऊंचे देश को ज्ञानादि द्वारा प्राप्त करते हैं, हमारे कल्याण के लिये हों ॥१०॥

सम्राजो ये सुवृधो यज्ञमाययु-
रपरिह्वृता दधिरे दिवि क्षयम्।
तां आ विवास नमसा सुवृक्तिभि-
र्महो आदित्यां अदितिं स्वस्तये।११।

अपने तेज से अच्छे प्रकार विराजमान ज्ञानादि से वृद्ध, जो विद्वान् लोग यज्ञ को प्राप्त होते हैं और जो सब से अपीड़ित देवता लोग बड़े-बड़े स्थानों में निवास करते हैं, उन गुणों से अधिक भक्तों को हव्यान्न के साथ और अच्छी स्तुतियों के साथ कल्याण के लिये सेवन कराओ ॥११॥

को वः स्तोमं राधति यं जुजोषथ,

विश्वे देवासो मनुषो यतिष्ठन ।

कोवोऽध्वरं तु विजाता अरं

करद् यो नः पर्षदत्यंहः स्वस्तये ।१२।

जिस स्तुति का तुम सेवन करते हो, उस स्तुति को कौन बनाता है ? हे

मननशील विद्वान् लोगो! तुम मे कौन यज्ञ को अलंकृत करता है? जो यज्ञ हमारे पाप को हटा कर कल्याण के लिये हमारा पालन करता है, उसका विचार करो ॥१२॥

येभ्यो होत्रां प्रथमामायेजे मनुः,
समिद्धाग्निर्मनसा सप्तहोतृभिः ।
त आदित्या अभयं शर्म यच्छत,
सुगा नः कर्त सुपथा स्वस्तये ॥१३॥

जिसके कारण विद्वान् लोग बड़े बड़े यज्ञों द्वारा सम्मान पाते हैं, वह भय-रहित सुख को देवे, और कल्याणकारी वैदिक मार्ग बतावे ॥१३॥

य ईशिरे भुवनस्य प्रचेतसो
विश्वस्य स्थातुर्जगतश्च मन्तवः ।
त नः कृतादकृतादेनसस्पर्य-
द्यादेवासः पिपृता स्वस्तये ॥१४॥

जो विद्वान् लोग अच्छे ज्ञान वाले, सब के जानने वाले स्थावर और जङ्गम लोक के स्वामी बनते हैं, वे आज कल्याण के लिये किये और न किये हुये पाप से पार करें ॥१४॥

भरेष्विन्द्रं सुहवं हवामहे, ऽहोमुचं
सुकृतं दैव्यं जनम् । अग्निं मित्रं
वरुणं सातये भगं, द्यावापृथिवी

मरुतः स्वस्तये ॥ १५ ॥

पाप के हटाने वाले, शक्तिशाली विद्वानों को संग्रामों मे अपनी रक्षा के लिये बुलावें, और श्रेष्ठ कर्म वाले आस्तिक पुरुषों को बुलावे और अन्नादि लाभ तथा अनुपद्रव के लिये अग्नि-विद्या, प्राण-विद्या, सेवनीय जल-विद्या, अन्तरिक्ष तथा पृथ्वी की विद्या और वायु-विद्या का हम सेवन करें ॥१५॥

सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसं,
सुशर्माणमदितिं सुप्रणीतिम् ।
दैवीं नावं स्वरित्रामनागसमस्र-
वन्तीमा रुहेमा स्वस्तये ॥ १६ ॥

अच्छे प्रकार रक्षा करने वाली, लम्बी चौड़ी, उपद्रव रहित, अच्छा सुख देने वाली, अच्छे प्रकार बनाई गई, सुन्दर यन्त्रों से युक्त, दृढ़, विद्युत् सम्बन्धी नौका अर्थात् विमान के ऊपर, हम लोग सुख के लिये चढ़ें ॥१६॥

विश्वे यजत्रा अधि वोचतोतये,

त्रायध्वं नो दुरेवाया अभिहुतः ।

सत्यया वो देवहूत्या हुवेम,

शृण्वतो देवा अवसे स्वस्तये ॥१७॥

हे पूजनीय विद्वानों ! हमारी रक्षा के लिये आप उपदेश किया करें ! पीड़ा देने वाली दुर्गति से, शत्रुओं से रक्षा

और सुख के लिये, हम आप को बुलाया करें ॥१७॥

अपामीवामप विश्वामनाहुति,
मपारातिं दुर्विदत्रामघायतः ।
आरे देवा द्वेषो अस्मद्युयोतनोरुणः
शर्म यच्छता स्वस्तये ॥ १८ ॥

हे विद्वानो ! रोगादि और लोभ बुद्धि को पृथक् करो। पाप की इच्छा करने वाले शत्रु की दुष्टबुद्धि को दूर करो, द्वेष करने वाले सब को हम से पृथक् करो, हमारे लिये बहुत सुख दो ॥१८॥

अरिष्टः स मर्त्तो विश्व एधते, प्र

प्रजाभिर्जायते धर्मणस्परि । यमा-
दित्यासो नयथा सुनीतिभि, रति
विश्वानि दुरिता स्वस्तये ॥ १९ ॥

जिन पुरुषों को अच्छी नीतियों से, पापों का उल्लघन करके सन्मार्ग में प्रवृत्ति करने की इच्छा होती है, वे सब पुरुष किसी से पीड़ित न हो कर बढ़ते हैं, धर्मानुष्ठान के बाद पुत्र पौत्रादिकों से भली भांति बढ़ते हैं ॥१९॥

यं देवासोऽवथ वाजसातौ, यं
शूरसाता मरुतो हि ते धने।
प्रातर्यावाणं रथमिन्द्रसानसि, मरि-
ष्यन्तमा रुहेमा स्वस्तये ॥ २०॥

हे विद्वान् लोगो ! अन्न के लिये जिस रमणीय, गमनसाधन वाष्प यानादि की रक्षा करते हो और धन के कारण संग्राम मे जिस रथ की रक्षा करते हो, बड़े यन्त्रालय के विद्वानो से भी सेवनीय, उसी रथ पर हम कल्याण के लिये चढें ॥२०॥

स्वस्ति नः पथ्यासु धन्वसु,

स्वस्त्यप्सु वृजने स्वर्वति ।

स्वस्ति नः पुत्रकृथेषु योनिषु,

स्वस्ति राये मरुतो दधातन ॥२१॥

हमारे लिये राज-मार्ग मे कल्याण हो, जल रहित देश मे, जलाशय कल्याणकारी हों, सब आयुधों से युक्त शत्रुओं

को दबाने वाली सेना में कल्याण हो, पुत्रों के उत्पन्न करने वाले उत्पत्ति स्थान में कल्याण हो, और गवादि के लिये कल्याण हो ॥२१॥

स्वरितरिद्धि प्रपथे श्रेष्ठा,

रेक्णं स्वस्त्यभि या वाममेति।

सा नो अमा सो अरणे निपातु,

स्वावेशा भवतु देवगोपाः ॥२२॥

जो समुद्र और पृथ्वी चलने वालों के लिये कल्याणकारिणी होती हैं, जो अति सुन्दर धन वाली हैं, जो यज्ञ को प्राप्त होती है, वह समृद्धि हमारे गृह की रक्षा करे, वही बन आदि देशों में रक्षिका हो ॥२२॥

इषे त्वोर्ज्जे त्वा वायव स्थ,
देवो वः सविता प्रार्पयतु,
श्रेष्ठतमाय कर्मण,
आप्यायध्वमघ्न्या इन्द्राय भागं ।
प्रजावतीरनमीवा अयक्ष्मा,
मा वस्तेन ईशत माघशꣳसो
ध्रुवा अस्मिन् गोपतौ स्यात,
बह्वीर्यजमानस्य पशून् पाहि ॥२३॥

हे ईश्वर! अन्नादि इष्ट पदार्थों और बलादि के लिये हम आप का आश्रय लेते है । हे जीवो ! तुम वायु-सदृश पराक्रम वाले हो । सब जगत् का

उत्पादक देव, यज्ञ-रूप श्रेष्ठ कर्म के लिये तुमको प्रेरणा करे। उस यज्ञ द्वारा अपने ऐश्वर्य को बढ़ाओ। न मारने योग्य, बछड़ों वाली, यक्ष्मा (तपेदिक) आदि रोगों से शून्य गौओं का, तुम लोगों मे जो चौर्यादि दुष्ट-गुणों से युक्त हो, स्वामी न बने अन्य पापी भी उनका रक्षक न बने। ऐसा यत्न करो जिससे बहुत सी चिरकाल पर्यन्त रहने वाली गौएं गौरक्षक के पास ठहरी रहे। परमात्मा से प्रार्थना करो कि यज्ञ के करने वाले के पशुओं की, हे ईश्वर! तुम रक्षा करो ॥२३॥

आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतो,

ऽदब्धासो अपरीतास उद्भिदः

देवा नो यथा सदमिद्वृधे असन्,
प्रायुवो रक्षितारो दिवेदिवे ॥२४॥

हमें शुभ सङ्कल्प प्राप्त हों। सर्वोत्तम दुःख नाशक विद्वान् लोग सर्वदा वृद्धि के लिए ही हों। उन्हें प्रति दिन प्रमाद-शून्य रक्षा करने वाले बनाओ ॥२४॥

देवानांभद्रा सुमतिर्ऋजूयतां,
देवाना॰ँ रातिरभि नो निवर्त्तताम्।
देवाना॰ँ सख्यमुपसेदिमा वयं,
देवा न आयुः प्रतिरन्तु जीवसे ॥२५

सरलतया आचरण करने वाली विद्वान् का कल्याण करने वाली अच्छी बुद्धि हमे प्राप्त हो, विद्वानों

विद्यादि पदार्थों का दान प्राप्त हो, विद्वानों के मित्र-भाव को हम प्राप्त हों, जिससे कि वे हमारी अवस्था को दीर्घकाल जीने के लिये बनावें ॥२५॥

तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं,

धियञ्जिन्वमवसे हूमहे वयम् ।

पूषा नो यथा वेदसामसद्वृधे,

रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये ॥२६॥

हम लोग ऐश्वर्य वाले चर और अचर जगत् के पति, परमात्मा की अपनी रक्षा के लिये स्तुति करते हैं, जिससे कि वह पुष्टिकर्ता धनों की वृद्धि करे। सामान्यता रक्षक और कार्यों का साधक परमात्मा कल्याण करे ॥२६॥

स्वस्ति नः इन्द्रो वृद्धश्रवाः,

स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः ।

स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः,

स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥२७॥

परमैश्वर्ययुक्त ईश्वर हमारा कल्याण करे ! पुष्टिकर्त्ता, सर्वज्ञ, ईश्वर हमारा कल्याण करे ! तीक्ष्ण तेजस्वी, दुःखहर्त्ता ईश्वर हमारा कल्याण करे ! बड़े-बड़े पदार्थों का पति हमारा कल्याण करे ॥२७॥

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा,

भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।

स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳ सस्तनूभि-

र्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ॥२८॥

विद्वान लोगो ! हम कानों से शुभ ही सुनें, नेत्रों से अच्छी वस्तुओं को देखें। दृढ़ अङ्गों से आप की स्तुति करने वाले हम लोग शरीरों से अथवा मर्यादा के साथ विद्वानों के लिये कल्याणकारी, जो आयु है उस को अच्छे प्रकार प्राप्त हों ॥२८॥

१ ३ १ २ ३ १ २
अग्नआयाहि वीतये,

३ २ ३ १ २
गृणानो हव्यदातये ।

१र२ र ३ २ २
नि होता सत्सिबर्हिषि ॥२९॥

हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! ज्ञान के

लिये प्रशंसित, आप देवताओ के लिये हव्य देने को प्राप्त होवें । सब पदार्थों के ग्रहण करने वाले आप, यज्ञादि शुभ कर्मों मे स्मरणादि द्वारा हमारे हृदयों मे स्थित होवे ॥२९॥

१ २ ३ २ ३
त्वमग्ने यज्ञाना᳖,
२ ३ १ २ ३ २
होता विश्वेषा᳖ हितः।
३ २ ३ २ ३ ३ २
देवेभिर्मानुषे जने ॥३०॥

हे पूजनीय ईश्वर ! आप छोटे-बड़े सब यज्ञों के उपदेष्टा हैं । विद्वान् लोगों से विचारशील पुरुषों मे भक्ति की उत्पत्ति के द्वारा स्थित किये जाते हैं ॥३०॥

ये त्रिषप्ताः परियन्ति ,

विश्वा रूपाणि बिभ्रतः ।

वाचस्पतिर्बला तेषां,

तन्वो अद्य दधातु मे ॥२१॥

तीन रजस, तमस और सत्वगुण तथा सात ग्रह अथवा तीन सात, अर्थात् ५ महाभूत ५ ज्ञानेन्द्रिय, ५ प्राण ५ कर्मेन्द्रिय, १ अन्तःकरण, जो सब चराचरात्मक वस्तुओं का अभिमत फल देकर पोषण करते हुए यथोचित लोट-पोट होते रहते है, उनके सम्बन्धी मेरे शरीर मे बलों को आज, हे वाणी के पति परमेश्वर ! धारण करो ॥२१॥

स्वस्ति-वाचन-समाप्त

अथ शान्ति प्रकरणम्

शं न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः

शन्न इन्द्रावरुणा रातहव्या

शमिन्द्रा सोमा सुविताय शं योः,

शन्न इन्द्रा पूषणा वाजसातौ ॥१॥

हे ईश्वर! बिजली और अग्नि रक्षा-सामग्री के द्वारा हमे सुखकारक हों, बिजली और जल हमे सुखकारी हो, सूर्य और चन्द्रमा उत्तम धन के लिये रोगनाशक और भय-निवर्त्तक हों। बिजली और पवन पराक्रम के लिये सुखदायक हों ॥१॥

शं नो भगः शमु नः शंसो अस्तु,

आर्यराजा श्री उम्मेदसिंह जी
शाहपुराधीश

राजपूताना केसरी
श्री कुं० चांदकरण जी शारदा
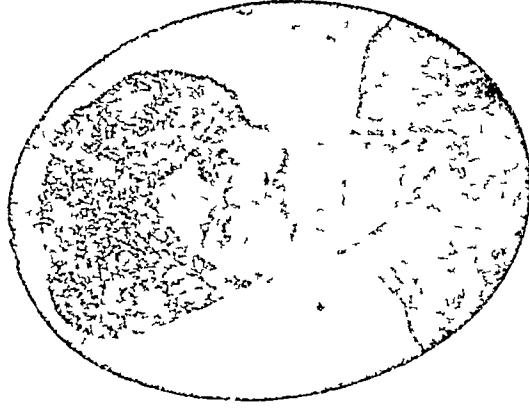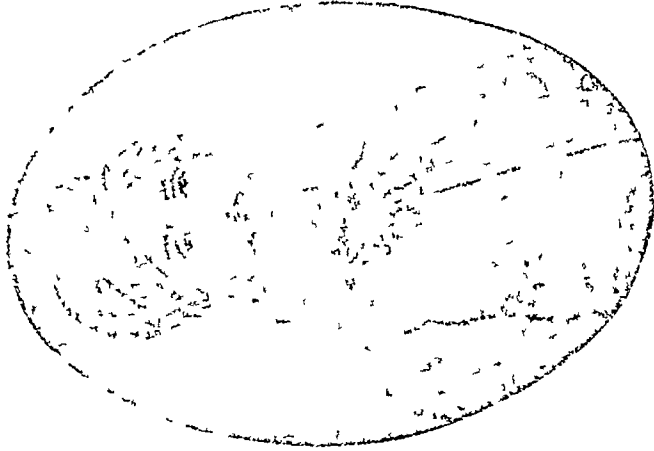
एम० ए०, साहित्यरत्न

श्री पं० गुरुदत्त जी एम० ए०
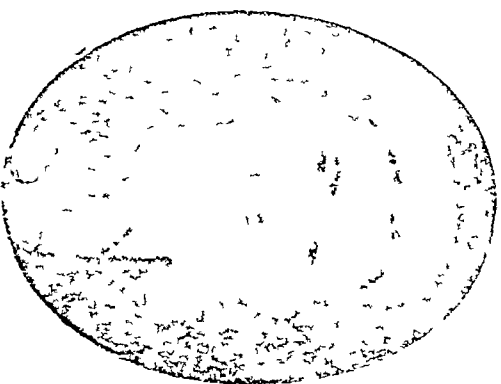
शहीद प० रामचन्दजी

शन्नः पुरन्धि शमु सन्तु रायः

शं नः सत्यस्य सुयमस्य शंसः,

शं नो अर्य्यमा पुरुजातो अस्तु ॥२॥

भगवन् ! हमारा ऐश्वर्य शान्तिदायक हो, हमारी प्रशंसा शान्तिदायक हो। हमारी बुद्धि शान्तिदायक हो, सब प्रकार के धन शान्तिदायक हों। शासन शान्तिदायक हों। श्रेष्ठों का मान करने हारा न्यायकारी भगवान शान्तिदायक हो ॥२॥

शं नो धाता शमु धर्त्ता नो अस्तु,

शं न उरूची भवतु स्वधाभिः।

शं रोदसी बृहती शं नो अद्रिः,

शं नो देवानां सुहवानि सन्तु ॥३॥

धारण करने वाले ईश्वर हमे शान्ति-कारक हों। दिशायें हमे बहुत अन्नों से शान्तिकारक हों। बहुत विस्तार वाले भूमि और सूर्य दोनो शान्तिकारक हों। मेघ अथवा पहाड़ हमे शान्तिकारक हों। विद्वान जनो के सुन्दर बुलावे हमे शान्तिकारक हों ॥३॥

शं नो अग्निर्ज्योतिरनीको अस्तु,

शं नो मित्रावरुणावश्विना शम्।

शं न सुकृतां सुकृतानि सन्तु,

शं न इषिरो अभिवातु वातः ॥४॥

प्रकाश-स्वरूप परमेश्वर हमारे लिये

शान्तिकारक हो, दिन और रात हमारे लिये सुखकारक हों। सूर्य और चन्द्रमा शान्तिकारक हों, शुभकर्म हमारे लिये शान्तिकारक हों। पवन हमारे चारों ओर चले ॥४॥

शं नो द्यावापृथिवी पूर्वहूतौ,
शमन्तरिक्षं दृशये नो अस्तु।
शं न ओषधीर्वनिनो भवन्तु,
शं नो रजसस्पतिरस्त, जिष्णुः ॥५॥

कार्य के आरम्भ में सूर्य, भूमि और मध्यलोक शान्तिदायक हों। औषधियां अन्नादि और वन के पदार्थ हम को शान्तिदायक हों ॥५॥

शन्न इन्द्रो वसुभिर्देवो अस्तु,

शमादित्येभिर्वरुणः सुशंसः ।

शं नो रुद्रो रुद्रेभिर्जलाषः,

शं नस्त्वष्टाग्नाभिरिह शृणोतु ॥६॥

सूर्य हमे सुखदायक हो, जल सूर्य की किरणो के साथ सुखदायक हो । ज्ञानदाता आचार्य नियमों द्वारा हमे सुखदायक हो । परमेश्वर हमारी वाणियो द्वारा हमारी प्रार्थना सुने ॥६॥

शं नः सोमो भवतु ब्रह्म शं नः,

शं नो ग्रावाणः शमु सन्तु यज्ञाः ।

शं नः स्वरूणां मितयो भवन्तु,

शं नः प्रस्त्र शम्वस्त वेदिः ॥७॥

चन्द्रमा हमें सुखदायक हो। यज्ञ सुखदायक हों। औषधियां हमे सुखदायक हों और वेदि सुखदायक हो ॥७॥

शं नः सूर्य उरुचक्षा उदतु,

शं नश्चतस्त्रः प्रदिशो भवन्तु।

शं नः पर्वता ध्रुवयो भवन्त,

शं नः सिन्धवः शमु सन्त्वापः ॥८॥

सूर्य हमें सुखदायक हो, चारों दिशाएं सुखदायक हों, पहाड़ सुखदायक हों, समुद्र सुखदायक हों और जल वा प्राण सुखदायक हों ॥८॥

शं नो अदितिर्भवतु व्रतेभिः

शं नो भवन्तु मरुतः स्वर्काः ।
शं नो विष्णुः शमु पूषा नो अस्तु,
शं नो भवित्रं शम्वस्तु वायुः ॥९॥

वेद विद्या व धरती हमे सुखदायक हो, विद्वान् लोग सुखदायक हो । सूर्य सुखदायक हो । भूमि सुखदायक हो । अन्तरिक्ष तथा जल सुखदायक हो और पवन सुखदायक दो ॥६॥

शन्नो देवः सविता त्रायमाणः,
शं नो भवन्तुषसो विभातीः ।
शं नोः पर्जन्यो भवतु प्रजाभ्यः
शं नः क्षेत्रस्य पतिरस्तु शम्भूः॥१०॥

रक्षक प्रभु हमे सुखदायक हो । जगमगाती हुई प्रभात वेलायें सुखदायक हों । बादल सुखदायक हों, क्षेत्र-पति किसान सुखदायक हो ॥१०॥

शं नो देवा विश्वेदेवा भवन्तु,

शं सरस्वती सह धीभिरस्तु ।

शमभिषाचः शमु रातिषाचः,

शं नो दिव्याः पार्थिवाः ॥११॥

विद्वज्जन सुखदायक हों, वेद विद्या सुखदायक हो । दानी सुखदायक हों । आकाश और पृथ्वी के पदार्थ हमें सुखदायक हों, जल सम्बन्धी पदार्थ हमे सुखदायक हों ॥११॥

शं नः सत्यस्य पतयो भवन्तु,

शं नो अर्वन्तः शमु सन्तु गावः ।

शं न ऋभवः सुकृतः सुहस्ताः,

शं नो भवन्तु पितरो हवेषु ॥१२॥

सत्यवक्ता हमे सुखदायक हो । घोड़े और गौयें सुखदायक हों । बुद्धिमान्, बड़े बड़े काम करने हारे, हस्तकार्य मे चतुर लोग हमे सुखदायक हो । माता पिता आदि हमे यज्ञो मे सुखदायक हो ॥१२॥

शं नो अज एकपाद् देवो अस्तु

शं नोऽहिर्बुध्न्यः शं समुद्रः ।

शं नो अपांनपात्पेरुरस्तु

शं नः पृश्निर्भवतु देवगोपाः॥१३॥

जगत् पाद, अजन्मा, व्यापक, भगवान् हमे शान्तिदायक हो । न हारने वाला सब मूलतत्वों का साधक हमे शान्तिदायक हो । सब का सींचने वाला ईश्वर शान्तिदायक हो । प्रजाओं को पार करने हारा, विद्वानों का रक्षक परमेश्वर हमें शान्तिदायक हो ॥१३॥

इन्द्रो विश्वस्य राजति ।

शं नो अस्तु

द्विपदे शं चतुष्पदे ॥१४॥

परमेश्वर! आप दो पांव वाले मनुष्य आदि के लिये और चौपाये गौ आदि पशुओं के लिये सुखकारक हों ॥१४॥

शं नो वातः पवता्ँ

शं नस्तपतु सूर्य्यः ।

शं नः कनिक्रदेवः

पर्जन्यो अभि वर्षतु ॥१५॥

परमेश्वर ! पवन सुखकारी हो । सूर्य हम को तपावे । उत्तम गुण वाले बादल हमारे लिये सब ओर से वर्षा करें ॥१५॥

अहानि शं भवन्तु नः

शँ रात्रीः प्रतिधीयताम् ।

शं न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः

शं न इन्द्रावरुणा रातहव्या ।

शं न इन्द्रापूषणा वाजसातौ

शमिन्द्रासोमा सुविताय शंयोः ॥१६॥

परमात्मन्! दिन और रात सुख के लिये हों। बिजली और प्रत्यक्ष अग्नि दोनों रक्षा सामग्री से हमें सुखकारक हों। जल, बिजली और पृथ्वी अन्नों के लाभ से हमें सुखकारी हों। सुख-दायक बिजली और पृथ्वी, उत्तम धन के लिये रोगनाशक और भय निवर्त्तक हों ॥१६॥

शं नो देवीरभिष्टय

आपो भवन्तु पीतये।

शंयोरभिस्रवन्तु नः ॥१७॥

हे प्रभो ! दिव्य गुण वाले जल-पूर्ण यज्ञ सुख के लिये आनन्द दायक हों, रोगनाशक भय-निवर्तक होकर सुख की वर्षा करें ॥१७॥

द्यौः शान्ति रन्तरिक्षꣳ शान्तिः
पृथिवी शान्तिरापः शान्ति-
रोषधयः शांतिः । वनस्पतयःशांतिर-
विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः,
सर्वꣳशांतिः, शांतिरेव शांतिः
सा मा शान्तिरेधि ॥१८॥

सूर्य आदि लोक सुखदायक हों । मध्य लोक सुखदायक हो । भूलोक सुखदायक हो । औषधियां सुखदायक हों । वृक्ष

सुखदायक हों। दिव्य-पदार्थ सुखदायक हों। ईश्वर, वेद, विद्या वा जितेन्द्रियता सुखदायक हों। सब कुछ सुखदायक हो। शान्ति भी सच्ची शान्ति हो। वह शान्तिदेवी मुझ को प्राप्त हो ॥१८॥

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् ।

पश्येम शरदः शतं, जीवेम शरदः शतꣳ

शृणुयाम शरदः शतं, प्रब्रवाम शरदः

शतमदीनाः स्याम शरदः शतं,

भूयश्च शरदः शतात् ॥१९॥

सब को देखने हारे विद्वानों के हितकारी, प्रलय से पूर्व विद्यमान, परब्रह्म को सौ वर्ष तक हम जीते हुए देखते

रहें। सौ वर्ष तक हम सुनते रहें। सौ वर्ष तक बोलते रहे, सौ वर्ष तक स्वतन्त्रता से रहे। सौ वर्ष से अधिक भी हम ऐसा ही व्यवहार करते रहे ॥१६॥

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं
तदु सुप्तस्य तथैवैति ।
दूरंगमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥२०॥

हे परमात्मन्! जो जागते हुए पुरुष का दिव्य गुण वाला मन दूर चला जाता है और वही मन सोए हुए का उसी प्रकार चलता रहता है। जो दूर दूर ले जाने वाला विषय-प्रकाशक इन्द्रियों का एक प्रकाशक है, वह मेरा मन धार्मिक विचार वाला हो॥२०॥

येन कर्माण्यपसो मनीषिणो

यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः ।

यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां

तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥२१॥

जिस मन द्वारा कर्म के जानने हारे धीर पुरुष यज्ञ अर्थात् धर्म व्यवहार में कामों को करते हैं, और प्राणियों के भीतर अद्वितीय और पूजनीय है, वह मेरा मन शुभ विचार वाला हो ॥२१॥

यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च

यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु ।

यस्मान्न ऋते किञ्चन कर्म क्रियते,

तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥२२॥

जो मन बुद्धि का उत्पादक, स्मरण-शक्ति और धारणा-शक्ति का आधार है; जो जीती जागती ज्योति, प्राणियों के भीतर है, जिस के बिना कुछ भी काम नहीं किया जाता, वह मेरा मन शुभ विचार वाला हो ॥२२॥

येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्प-

रिगृहीतममृतेन सर्वम्।

येन यज्ञस्तायते सप्तहोता

तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥२३॥

प्रभो! जिस अमर-मन के द्वारा तीनों काल का सब वृत्तान्त सर्वथा जाना

जाता है। जिस के द्वारा सात हवन करने वालों से पूरा किया हुआ पूजनीय कर्म फैलाया जाता है, वह मेरा मन शुभ संकल्प वाला हो ॥२३॥

यस्मिन्नृचः साम यजूꣳषि यस्मिन्
प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः।
यस्मिँश्चित्तꣳसर्वमोतं प्रजानां,
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥२४॥

परमात्मन्! जिस मन में चारों वेदों का ज्ञान इस प्रकार विद्यमान् है, जैसे रथ के पहिये में अरे अटके रहते हैं। जिस में प्राणियों का सब विचार बना हुआ है, वह मेरा मन भलाई का ही विचार करने वाला हो ॥२४॥

सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्या

न्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिन इव ।

हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं,

तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥२५॥

प्रभो ! जो मन मनुष्यो को लगातार लिये फिरता है, जैसे चतुर सारथि बागडोर से वेग वाले घोड़ों को । जो हृदय मे ठहरा हुआ सब का चलाने वाला, बड़ा ही वेग वाला है, वह मेरा मन मगल विचार युक्त हो ॥२५॥

१ २ ३ २ ३
स नः पवस्व शंगवे,

१ २र३ १ २
शं जनाय शमर्वते ।

१ २३१२
शं राजन्नोषधीभ्यः ॥२६॥

हे परमेश्वर! गौओं और मनुष्यों की रक्षा के लिये, अन्न और साम आदि औषधियों की रक्षा के लिये हमे सामर्थ्य दे ॥२६॥

अभयं नः करत्यन्तरिक्षमभयं

द्यावापृथिवी उभे इमे ।

अभयं पश्चादभयं पुरस्ता-

दुत्तरादधरादभयं नो अस्तु ॥२७॥

हे भगवान्! हमें मध्य-लोक अभय करे पश्चिम में अभय हो । उत्तर और दक्षिण मे हमारे लिये अभय हो ॥२७॥

अभयं मित्रादभयममित्रा-

दभयं ज्ञातादभयं पुरोयः ।

अभयं नक्तमभयं दिवा नः

सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु ॥२८॥

अभय प्रभो ! हमें मित्र से और अजानकार से अभय हो, हमारे लिये रात्रि में अभय हो, मेरी सब आशायें वा दिशायें हितकारी हो ॥२८॥

* शान्ति प्रकरण समाप्त *

अथ सामान्य प्रकरण

१—आचमन-मन्त्र

ओं अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा ॥१॥
ओं अमृतापिधानमसि स्वाहा ॥२॥
ओं सत्यं यशः श्रीर्मयिश्रीः श्रयतां स्वाहा

हे भगवान्! यह सुखप्रद जल सबका आश्रयभूत हैं, यह कथन शुभ हो ॥१॥

हे अमर परब्रह्म! तू जगत् का सर्वथा धारण करने वाला है ॥२॥

हे परमेश्वर! सत्यकर्म, यश, सम्पत्ति और ऐश्वर्य मुझ मे विराजमान हो ॥३॥

२—अङ्ग-स्पर्श-विधि

ओं वाङ्म ऽआस्येऽस्तु ॥१॥ (मुख)
ओं नसोर्मे प्राणोऽस्तु ॥२॥ (नाक)

ओं अक्ष्णोर्मे चक्षुरस्तु ॥३॥ (आंखें)

ओं कर्णयोर्मे श्रोत्रमस्तु ॥४॥ (कान)

ओ बाह्वोर्मे बलमस्तु ॥५॥ (भुजाएँ)

ओं ऊर्वोर्मे ओजोस्तु ॥६॥ (जंघा)

ओं अरिष्टानि मेऽङ्गानि तनूस्तन्वा मे सह सन्तु ॥७॥ (शरीर)

मेरे मुख मे बोलने की शक्ति रहे ॥१॥
मेरे दोनो नथनो मे श्वास-शक्ति रहे ॥२॥
मेरी दोनों आंखों मे दृष्टि रहे ॥३॥
मेरे कानों मे श्रवण-शक्ति रहे ॥४॥
मेरी भुजाओं मे बल हो ॥५॥
मेरी जघाओं मे बल रहे ॥६॥

परमेश्वर ! मेरे अङ्ग रोग-रहित और पुष्ट हों, यह सदा शरीर के साथ रहे। निम्नलिखित मन्त्र से अग्नि प्रदीप्त करें।

३—अग्न्याधान-मन्त्र

विदेशी कपूर यथासम्भव न बरतें, सुनते हैं, उसमें अपवित्र पदार्थों का योग होता है। अच्छा हो, यदि समिधा को घृत लगाकर अग्नि को प्रदीप्त किया जाए

ओं भूर्भुवः स्वः ।

ओं भूर्भुवः स्वर्द्यौरिव भूम्ना

पृथिवीव वरिम्णा ।

तस्यास्ते पृथिवि देवयजनि

पृष्ठेऽग्निमन्नादमन्नाद्यायादधे ॥१॥

अर्थ-ईश्वर कृपासे इस अग्निको प्रदीप करता हुआ मैं भूमि, अन्तरिक्ष और द्यौ-लोक को अपने अनुकूल बनाता हूँ।

यह बोल कर अग्नि को कुण्ड मे रखो।
परमेश्वर सब का आधार सब मे व्यापक, सुखस्वरूप है। वह परमेश्वर ससान के लिये बृहत्त्व के कारण आकाश के सामने और फैलाव से पृथ्वी के समान है। हे भगवन्! यह पृथ्वी, जो देवताओं का यज्ञस्थान है, उसकी पीठ पर हव्य खाने हारे भौतिक अग्नि को खाने योग्य अन्न की प्राप्ति के लिये मै स्थापित करता हूँ ॥१॥
अगले मन्त्र से अग्नि को खूब जलाओ।

४—पवन-दान-मन्त्र

ओं उद्बुध्यास्वाग्ने प्रति जागृहि
त्वमिष्टापूर्त्ते सꣳ सृजेथामयं च

अस्मिन्त्सधस्थे अध्युत्तरस्मिन्,

विश्वे देवा यजमानश्च सीदत ॥२॥

हे विद्वान् यजमान ! तू उत्तम रीति से चैतन्य को प्राप्त हो और प्रत्यक्ष जागृत हो। हे यजमान् ! तू और यज्ञ, दोनों इष्ट अर्थात् वेदाध्ययन, आतिथ्य आदि और पर्त अर्थात् प्याऊ, बगीचा, धर्म-शाला आदि कर्म करो। हे सब विद्वान जनो ! आप इस उत्तम समाज मे अधि-कार पूर्वक बैठो ॥५॥

५—समिदाधान-मन्त्र

ओं अयं त इध्म आत्मा जातवेदस्-

तेनेध्यस्व वर्धस्व चेद्ध वर्धय

चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसे-

नान्नाद्येन समेधय स्वाहा ॥

इदमग्नये जातवेदसे इदं न मम ॥१॥

ओं समिधाग्निं दुवस्यत

घृतैर्बोधयतातिथिम् ।

आस्मिन् हव्या जुहोतन स्वाहा ।

इदमग्नये-इदन्न मम ॥२॥

ओं सुसमिद्धाय शोचिषे

घृतं तीव्रं जुहोतन ।

अग्नये जातवेदसे स्वाहा ॥

इदमग्नये जातवेदसे-इदं न मम ॥३॥

ओं तन्त्वा समिद्भिरङ्गिरो

घृतेन वर्धयामसि ।

बृहच्छोचायविष्ठय स्वाहा ॥

इदमग्नयेऽङ्गिरसे-इदं न मम ॥४॥

(आठ-आठ अंगुल लकड़ी की तीन समिधा घृत मे भिनो कर 'पहले' मन्त्र से पहली' 'दूसेर' वा 'तीसेरे' से 'दूमरी' और 'चौथे' मन्त्र से 'तीसरी, समिधा कुण्ड में डालो)

हे सब पदार्थों में विद्यमान् परमेश्वर! यह मेरा आत्मा तेरे लिये ईन्धन रूप है। इस से मुझ में तू प्रकाशित हो और यह अवश्य ही बढ़े। हम को तू पुत्र-पौत्र, सेवक आदि प्रजा से, गौ आदि पशुओं से, वेद-विद्या के तेज से, भोग्य धान्य,

घृत आदि अन्न से समृद्ध कर। यह सुन्दर आहुति है। यह ज्ञानस्वरूप परमेश्वर के लिये है, मेरे लिये नहीं ॥१॥

ईन्धन से और घृत से व्यापनशील अग्नि को तुम सब पूजो और चेताओ। इस मे हवन-सामग्री को यथाविधि डालो, यह सुन्दर आहुति है। यह परमेश्वर के लिये है। मेरे लिये नहीं ॥२॥

(ऊपर का मन्त्र जो सारा नहीं पढ़ा जाता, पूर्ण पढना चाहिये)

अच्छे प्रकार प्रदीप्त, संशोधक पदार्थों मे विद्यमान अग्नि में तपाया हुआ घृत डालो। वह सुन्दर आहुति परमेश्वर के लिये है, मेरे लिये नहीं ॥३॥

इस व्यापनशील अग्नि को ईंधनों और घृत से प्रदीप्त करते हैं। यह जो अत्यन्त

संयोजक है, यह बहुत प्रज्वलित है, यह सुन्दर आहुति परमेश्वर के लिये है, मेरे लिये नहीं ॥४॥

६—घृताहुति—मन्त्र

स्रुवा को अंगुष्ठ, मध्यमा और अनामिका से पकड़ ६ माशे की घृताहुति देवे। जिन मन्त्रों के साथ (इदं न मम) यह प्रयोग है, उस प्रत्येक आहुति से स्रुवा के बचे घृत को जलपात्र मे इकट्ठा करते जायें और यज्ञ-समाप्ति पर मुख आदि अङ्गों पर मल लेवें।

इस मन्त्र से पाच घृत की आहुति देवें।

अयन्त इध्म आत्मा जातवेदस्,
तेनेध्यस्व वर्धस्व चेद्ध वर्धय,
चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्म-

वर्चसेनान्नाद्येन समेधय स्वाहा ।
इदमग्नये जातवेदसे इदन्न मम ॥

इसका अर्थ समिदाधान में देखिये ।

७—जलप्रसेचन (परिखा) मन्त्र

दाहिनी अञ्जलि में जल लेके इन मन्त्रों से वेदी के चारों ओर क्रम से पूर्व', 'पश्चिम', 'उत्तर', तथा 'दक्षिण', से आरम्भ कर फिर सब ओर जल छिड़कें ।

ओं अदितेऽनुमन्यस्व ॥१॥ (पूर्व)
ओं अनुमतेऽनुमन्यस्व ॥२॥ (पश्चिम)
ओं सरस्वत्यनुमन्यस्व ॥३॥ (उत्तर)

ओ देव सवितः प्रसुव यज्ञं,
प्रसुव यज्ञपतिं भगाय ।

दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतन्नः

पुनातु वाचस्पतिर्वाचं नः स्वदतु ॥४॥

(सब ओर)

हे अखण्ड परमेश्वर ! आप प्रसन्न होकर हमें अनुकूल मति दीजिये ॥१॥

हे हितकारी बुद्धि वाले ईश्वर ! आप हमे भी हितकारिणी मति दीजिये ॥२॥

सब विद्याओं के भण्डार जगदीश्वर ! आप प्रसन्न होकर हमे प्रसन्नता दो ॥३॥

हे प्रकाशमय, सब के चलाने हारे परमेश्वर ! इस यज्ञ वा उत्तम कर्म को आगे बढ़ा और यज्ञ के रक्षक यजमान को ऐश्वर्य की सिद्धि के लिये आगे बढ़ा । अद्भुत स्वभाव, विद्याओं के आधार, बुद्धि शुद्ध करने हारे परमे-

श्वर ! हमारी बुद्धि को शुद्ध करो। विद्या के स्वामी परमात्मन् ! हमारी विद्या को मधुर करो ॥४॥

८—आघारावाज्याहुति-मन्त्र

ओं अग्नये स्वाहा

इदमग्नये इदन्न मम ॥१॥ (उत्तर)

ओं सोमाय स्वाहा

इदं सोमाय-इदं न मम ॥ (दक्षिण)

'इन मन्त्रों से घृताहुति देवें-'पहले से 'उत्तर' भाग मे और 'दूसरे' से 'दक्षिण' मे एक एक आहुति दे ।

यह प्रभु के लिये आहुति है, मेरे लिये नहीं ॥८४॥

सौम्य-स्वभाव परमेश्वर के लिये यह सुन्दर आहुति है, मेरे लिये नहीं ॥१॥

१—आज्यभागाहुति-मन्त्र

इससे मध्य में घृताहुति देवें।

ओं प्रजापतये स्वाहा।

इदं प्रजापतये-इदन्न मम ॥१॥

ओं इन्द्राय स्वाहा।

इदमिन्द्राय-इदन्न मम ॥२॥

प्रजा-पालक ईश्वर के लिये यह आहुति है, मेरे लिये नहीं ॥१॥

परम ऐश्वर्य वाले परमात्मा के लिये यह आहुति है, मेरे लिये नहीं ॥२॥

दैनिक अग्नि होत्र

१०—प्रातः काल के मन्त्र

ओं सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यःस्वाहा।१।
ओं सूर्यो वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा ।२।
ओं ज्योति सूर्यःसूर्यो ज्योति स्वाहा ।३।
ओं सजूर्देवेन सवित्रा,
सजूरुषसेन्द्रवत्या ।
जुषाणःसूर्यो वेतु स्वाहा ॥४॥

चराचर के आत्मा! प्रकाशस्वरूप, सूर्यादि लोकों के प्रकाश की प्रसन्नता के लिये हम होम करते हैं ॥१॥

जो सूर्य, परमेश्वर हम को विद्याओं का देने वाला, और हम से उन का प्रचार कराने वाला है, उसी के अनुग्रह से हम होम करते हैं ॥२॥

जो स्वयं प्रकाशमान् और जगत् का प्रकाश करने वाला सूर्य अर्थात् परमेश्वर है, उसकी प्रसन्नता के लिये हम होम करते हैं ॥३॥

जो परमेश्वर सूर्यादि लोकों मे व्यापक वायु और दिन के साथ परिपूर्ण, सबसे प्रीति करने वाला है, वह हमको विदित हो। उसके लिये हम होम करते हैं ॥४॥

ओं अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा।१।

ओं अग्निर्वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा॥२॥

ओं अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा॥ ३॥

ओं सजूर्देवेन सवित्रा,
सजूरा त्र्येन्द्रवत्या।
जुषाणो अग्निर्वेतु स्वाहा ॥४॥

तीसरे को मन में पढ़ कर आहुति देवें।

अग्नि ज्योति है; जितना प्रकाश है, वह अग्नि का है। जो अग्नि परमेश्वर है, उसी की विभूति है ॥१॥

अग्नि दीप्ति है, यह ज्योतिस्वरूप परमात्मा की ही दीप्ति है ॥२॥

तीसरे का अर्थ पहले के समान समझो ॥३॥

प्रकाशमान् सर्व-प्रेरक प्रभु का सायं-काल के सूर्य के रूप में वर्त्तमान विभूति के साथ तथा ऐश्वर्ययुक्त रात्रि के साथ समान प्रीतियुक्त सेवन की जाती हुई आग, जो सामने है, उसमें प्रभु प्राप्त हों, और हमारा यह यज्ञ सफल हो ॥४॥

१२—सायं-प्रातः के मन्त्र

ओ भूरग्नये प्राणाय स्वाहा।
इदमग्नये प्राणाय-इदं न मम ॥१॥

ओं भुवर्वायवेऽपानाय स्वाहा ।
इदं वायवेऽपानाय-इदं न मम ॥२॥
ओं स्वरादित्याय व्यानाय स्वाहा ।
इदमादित्याय व्यानाय-इदं न मम॥३॥
ओं भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः,
प्राणापानव्यानेभ्यः स्वाहा ।
इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः,
प्राणापानव्यानेभ्य, इदं न मम ॥४॥
ओं आपो ज्योतिरसोऽमृतं,
ब्रह्म भूर्भुवः स्वरों स्वाहा ॥५॥
ओं यां मेधां देवगणाः,
पितरश्चोपासते ।
तया मामद्य मेधयाऽग्ने,

मेधाविनं कुरु स्वाहा ॥६॥
ओं विश्वानि देव सवितर्,
दुरितानि परासुव ।
यद्भद्रं तन्न आसुव स्वाहा ॥७॥
ओं अग्ने ! नय सुपथा राये अस्मान्,
विश्वानि देव ! वयुनानि विद्वान् ।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो,
भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम स्वाहा॥८॥

परमेश्वर सर्वाधार है, उत्तम प्रभाव और श्वास की स्वस्थता के लिये यह सुन्दर आहुति है । यह प्राण-वायु के लिये है, मेरे लिये नही ॥१॥

परमेश्वर सर्वव्यापी है । पवन के प्रभाव के लिये और प्रश्वास की स्वस्थता के लिये यह सुन्दर आहुति है । यह अपान

वायु के लिये है, मेरे लिये नहीं ॥२॥

परमेश्वर सुखस्वरूप है, सूर्य के उत्तम तेज और सब शरीर मे घूमने वाली वायु की स्वस्थता के लिये यह सुन्दर आहुति है। यह सूर्य और व्यान के लिये है, मेरे लिये नहीं ॥३॥

परमेश्वर सर्वाधार, सर्वव्यापी और सुखस्वरूप है। अग्नि, वायु और सूर्य के उक्त प्रभाव के लिये और प्राण, अपान, व्यान के लिये यह सुन्दर आहुति है, मेरे लिये नहीं है ॥४॥

सर्वरक्षक परमेश्वर, सर्वव्यापी, ज्योतिस्वरूप, जगत् का बीज, अमर, सब से बड़ा, सर्वाधार, सर्वव्यापक और सुखस्वरूप है ॥५॥

जिस बुद्धि वा धन का, विद्वान् जन और माननीय रक्षक महात्मा लोग

आश्रय लेते है, उस बुद्धि वा धन से, हे ज्ञानस्वरूप परमेश्वर ! मुझ को आज बुद्धिमान् वा धनवान् करो ।।६।।

सातवें और आठवे मन्त्र का अर्थ 'ईश्वर-स्तुति प्रार्थनोपासना' में देखिये ।

इस क्रिया के पश्चात् यदि घी, सामग्री बच रहे तो गायत्री मन्त्र से आहुतियां दे ।

पूर्णाहुति-मन्त्र

इस मन्त्र से तीन बार स्रुवा को घृत से भर के आहुति दें ।

ओ३म् सर्वं वै पूर्ण${}^{\circ}$स्वाहा ।।

फिर शान्ति पाठ से यज्ञ को समाप्त करें ।

शेष-सामान्य-प्रकरण

विशेष अथवा बड़ा अग्निहोत्र करना हो, तो "आज्य-भागाहुतियों" (ओं इन्द्राय स्वाहा) के पश्चात् निम्न मन्त्रों से होम करें।

१—महाव्याहृति-आहुतिमन्त्र

ओं भूरग्नये स्वाहा। इदमग्नये-इदन्न मम
ओं भुवर्वायवे स्वाहा। इदं वायवे-इदन्न मम। ओं स्वरादित्याय व्यानाय स्वाहा
इदमादित्याय व्यानाय-इदन्न मम ॥३॥
ओं भूर्भुवःस्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः स्वाहा
इदमग्निवाय्वादित्येभ्यःइदन्नमम ॥४॥

अर्थ—सर्वाधार अग्नि के लिये, दुःख-नाशक वायु समान व्यापक के लिये, सुखरूप, प्रकाशस्वरूप के लिये, सच्चे

हृदय से मै आहुति देता हूँ । प्रभो! आप स्वीकार करें ॥ -४॥

२-स्विष्टकृत्-आहुति-मन्त्र

ओं यदस्य कर्मणोऽत्यरीरिचं
यद्वा न्यूनमिहाकरम् ,
अग्निष्टत् स्विष्टकृत्विद्यात्,
सर्वं स्विष्टं सुहुतं करोतु मे,
अग्नये स्विष्टकृते सुहुतहुते,
सर्व प्रायश्चित्ताहुतीनां,
कामानां समर्द्धयित्रे,
सर्वान्नः कामान्त्समर्द्धय स्वाहा,
इदमग्नये स्विष्टकृते—इदन्न मम ॥

अर्थ—मै जो कुछ इस कर्म के सम्बन्ध मे विधि से अधिक कर चुका हूँ, वा

इस में न्यून कर बैठा हूँ। यज्ञ को पूर्ण करने वाला भौतिक और अध्यात्मिक अग्नि मेरे यज्ञ को अच्छी प्रकार किया आ करे।

अग्नि के लिये, जो यज्ञ को ठीक बनाने वाला, आहुति को ठीक करने वाला, प्रायश्चित्त और सब कामनाओं को सफल करने वाला है, यह आहुति देता हूँ हे अग्ने ! हमारी सारी कामनाओं को परिपूर्ण करो। वह मेरी वाणी सत्य हो। यह स्विष्टकृत् अग्नि के लिये समर्पण कर चुका हूं, इस पर मेरा स्वत्व नहीं।

३—प्राजापत्याहुति-मन्त्र

प्रजापतये स्वाहा ।

इदं प्रजापतये-इदन्न मम ।

(यह मन्त्र भी मन मे ही पढ़ना चाहिए)

अर्थ-यह आहुति प्रजापति परमात्मा के लिये है, मेरे लिये नहीं ।

४—प्रधान-होम-सम्बन्धी

आज्याहुति—मंत्र

ओं भूर्भुवः स्वः ।

अग्न ! आयूंषि पवस,

आ सुवोर्ज्जमिषं च नः ।

आरे बाधस्व दुच्छुनां, स्वाहा ॥

इदमग्नये पवमानाय-इदन्न मम ॥१॥

अर्थ—हे सर्वाधार, दुःखनाशक सुख-रूप, प्रकाशस्वरूप भगवान् ! आप हमारे जीवनों को पवित्र करते तथा बढ़ाते

हो। हमे बल और अन्न प्रदान करो। राक्षसों को दूर भगाओ। मेरी यह वाणी सत्य हो। यह हवि पवित्र करने वाले प्रभु के लिये है, मेरे लिए नहीं ॥१॥

ओं भूर्भुवः स्वः।

अग्निर्ऋषिः पवमानः,

पाञ्चजन्यः पुरोहितः

तमीमहे महागयं स्वाहा।

इदमग्नये पवमानाय—इदन्न मम ॥२॥

अर्थ—जो अग्नि सब को देखने वाला, पवित्र करने वाला, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और आर्य वर्ण से बाहिर भी सब प्रजाओं के पालन करने वाला, सब धार्मिक कार्यों में प्रमुख होकर

सहायता करने वाला, अत्यन्त बलवान् है, उसे हम सब धर्म-कर्म की सफलता के लिए प्राप्त होते हैं ॥२॥

ओं भूर्भुवः स्वः ।

अग्ने पवस्व स्वपा,

अस्मे वर्चः सुवीर्यम् ।

दधद्रयिं मयि पोषं स्वाहा

इदमग्नये पवमानाय-इदन्न मम ॥३॥

अर्थ—हे सर्वाधार, दुःखापहारक, प्रकाशमान प्रभो ! आप अच्छे कर्मों के अधिष्ठाता हैं । आप हम मे तेज-पूर्ण ऐश्वर्य और पुष्टि धारण करते हुए पवित्र करें ॥३॥

ओं भूर्भुवः स्वः।

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो,

विश्वा जातानि परि ता बभूव।

यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु

वयं स्याम पतयो रयीणाम् स्वाहा।

इदं प्रजापतये-इदन्न मम ॥४॥

इस का अर्थ 'ईश्वर-स्तुति-प्रार्थनोपासना' मन्त्रों में देखो ॥४॥

५—अष्टाज्याहुति-मन्त्र

ओं त्वन्नो ऽअग्ने वरुणस्य विद्वान्,

देवस्य हेळो ऽअवयासिसीष्ठाः।

यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो,

विश्वा द्वेषांसि प्र मुमुग्ध्यस्मत् स्वाहा ।

इदमग्निवरुणाभ्याम्-इदन्न मम ।।१।।

हे अग्ने ! सुखस्वरूप ! परमात्मन् ! आप कर्मों के फलदाता, क्रोध को जानने वाले ! आप उस क्रोध को दूर करो, यजन-शील तथा यज्ञीय भागों का वहन करने वाले ! आप अत्यन्त दीप्त होकर, हमारे सम्पूर्ण पापो को दूर करो ।।१।।

ओं स त्वन्नो ऽअग्नेऽवमो भवोती,

नेदिष्ठो अस्या उषसो व्युष्टौ ।

अव यक्ष्व नो वरुणं रराणो,

वीहि मृडीकं सुहवो न एधि स्वाहा ।

इदमग्निवरुणाभ्यां-इदन्न मम ।।२।।

हे अग्ने ! परमात्मन् ! हमारे सदा से रक्षक आप आज के प्रातः काल की यज्ञादि की सिद्धि के लिये समीपवर्ती होवें । हमें श्रेष्ठ उपदेशक दीजिये और इस प्रकार हमारे सुखदायक यज्ञीय भाग को प्राप्त कीजिये ।।२।।

ओं इमं मे वरुण ! श्रुधी,

हवमद्या च मृळय ।

त्वामवस्युरा चके स्वाहा ।

इदं वरुणाय—इदन्न मम ।।३।।

हे वरुण ! तुम आज मेरी इस प्रार्थना को सुनो और मुझे सुखी करो । रक्षार्थ मैं तुम्हारी स्तुति करता हूं ।।३।।

ओं तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्,

तदाशास्ते यजमानो हविर्भिः ।

अहेळमानो वरुणेह बोध्यु-

रुशंस मा न आयुः प्र मोषीः स्वाहा ।

इदं वरुणाय-इदन्न मम ॥४॥

हे जगत्प्रभो! हवि आदि देकर जिस आयु को यजमान लोग तुम्हारा सत्कार करते हुए आशा करते हैं, उस ही प्रसिद्ध सौ-वर्ष की आयु को मै भी तुम से मांगता हूं। हे महाराज! उस आयु में से कुछ भी कम न कीजिये ॥४॥

ये ते शतं वरुण ये सहस्रं,

यज्ञियाः पाशाः वितता महान्तः

तेभिर्नो अद्य सवितोत विष्णुर्-
विश्वे मुञ्चन्तु मरुतः स्वर्काःस्वाहा ।
इदं वरुणाय सवित्रे विष्णवे विश्वेभ्यो,
देवेभ्यो,मरुद्भ्यःस्वर्केभ्यःइदं न मम।५।

हे वरुण ! यज्ञ के जो सैंकड़ों और सहस्रों बड़े-बड़े विघ्न हैं, उनसे आप और विद्वान् लोग हम को दूर रक्खें ॥५॥

ओं अयाश्चाग्नेऽस्यनभिशस्ति,-
पाश्च सत्यमित्त्वमयासि ।
अया नो यज्ञं वहासि,
अया नो धेहि भेषजꣳस्वाहा ।
इदमग्नये अयसे—इदन्न मम ॥६॥

हे कल्याण कारक अग्ने ! तुम सब जगह व्यापक और कुत्सित कर्म करने वालों को पवित्र करने वाले हो। हे अग्ने !

तुम हमारे यज्ञीय भागों को देवताओं के लिये वहन करते हो, हमको सुख-कारक औषधि दीजिये ॥६॥

ओ उदुत्तम वरुण पाशमस्मद,

वाधमं वि मध्यम श्रथाय ।

अथा वयमादित्य व्रते तवा,

नागसोऽदितये स्याम स्वाहा ॥

इदं वरुणायाऽऽदित्यायाः

ऽदितये च-इदन्न मम ॥७॥

हे वरुण ! आप हमारे उत्तम, मध्यम और निकृष्ट बन्धन को ढीला कीजिये और फिर हम लोग तुम्हारे शासन में पाप-कर्मों से अलग रह कर मुक्ति-सुख के लिये यत्न करते रहें ॥७॥

ओं भवतन्नः समनसौ,

सचेतसावरेपसौ ।

मा यज्ञꣳहिꣳसिष्टं मा यज्ञपतिं,

जातवेदसौ शिवौ भवतमद्यनः स्वाहा ।

इदं जातवेदोभ्यां—इदन्न मम ॥८॥

हे परमात्मन्! समान मन वाले एक दूसरे के सहायक तथा हमारे अनिष्ट-चिंतन से रहित हूजिये। हमारे यज्ञ तथा यज्ञपति को पीडा न पहुंचाइये, और हमारे लिये कल्याणकारक हूजिये ॥८॥

५—प्रतिज्ञाहुति-मन्त्र

बृहद् हवन में शान्ति पाठ से पहले निम्नलिखित मन्त्रों से भी आहुतियां

दी जा सकती हैं।

ओं अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि,
तत्त प्रब्रवीमि तच्छकेयं।
तेनर्ध्यासमिदमहम्,
अनृतात्सत्यमुपैमि स्वाहा।
(इदमग्नये—इदन्न मम) ॥१॥

६-पूर्णाहुति-मन्त्र

ओं पूर्णा दर्विपरापत,
सुपूर्णा पुनरापत।
वस्नेवविक्रीणावह,
इषमूर्जं शतक्रतो स्वाहा ॥१॥
ओं पूर्णमदः पूर्णमिदं,
पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।

पूर्णस्य पूर्णमादाय,
पूर्णमेवावशिष्यते स्वाहा ॥२॥
ओं सर्वं वै पूर्णं स्वाहा ॥३॥
इसको ३ बार पढ़कर ३ आहुतियां दें ।

७-शेष घृत छोड़ने का मन्त्र

ओं वसोः पवित्रमसि शतधारं,
वसोः पवित्रमसि सहस्रधारम् ।
देवस्त्वा सविता पुनातु वसोः,
पवित्रेण शत धारेण सुप्वा कामधुक्षः ॥१॥

८—प्रार्थना मंत्र

ओं तेजोऽसि तेजो मयि धेहि,
वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि ।
बलमसि बलं मयि धेहि ।

ओजोऽस्योजो मयि धेहि ।
मन्युरसि मन्यु मयि धेहि ।
सहोऽसि सहो मयि धेहि ॥

ओं मयि मेधां मयि प्रजां,
मय्यग्निस्तेजो दधातु ।
मयि मेधां मयि प्रजां,
मयीन्द्र इन्द्रियं दधातु ॥
मयि मेधां मयि प्रजां,
मयि सूर्यो भ्राजो दधातु ।

ओं यत्ते अग्ने वर्चस्,
तेनाहं वर्चस्वी भूयासम् ।
यत्ते अग्ने हरस्-
स्तेनाहं हरस्वी भूयासम् ॥२॥

१—हवि-शेष-घृत-मलन-मन्त्र

ओं तनूपा अग्नेऽसि, तन्व मे पाहि ॥१॥
ओं आयुर्दा अग्नेऽस्यायुर्मे देहि ॥२॥
ओं वर्चोदा अग्नेऽसि वर्चो मे देहि ॥३॥
ओं अग्ने यन्मे तन्वाऽऊनं तन्म आपृण॥४॥
ओं मेधां मे सविता आददातु ॥५॥
ओं मेधां मे देवी सरस्वती आददातु॥६॥
ओं मेधां मे अश्विनौ,
देवतावाधत्तां पुष्करस्रजौ ॥७॥
ओं शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

मंगलाचरण-भजन नं० १

तुम्हारी कृपा से जो आनन्द पाया,
वाणी से जाय वह क्योंकर बताया ।

नहीं हैं यह वह रस जिसे रसना चाखे,
नहीं रूप उसका कभी दृष्टि आया ॥
नहीं है यह वह गंध जो घ्रान जाने,
त्वचा से न जाय यह छुआ छुहाया ।
संख्या में आना असम्भव है उसका,
दिशाकाल मे भी रहे न समाया ॥
तुझसा न दाता है तुझसा न दानी,
इतना बडा दान जिसने दिलाया ।
आत्म उन्नति मे तुम्हारी दया से,
मेरी ज़िन्दगी ने अजब पल्टा खाया ॥
सत चित आनन्द और अनंत स्वरूप,
मुझे मेरे अनुभव ने निश्चय कराया ।
गूंगे की रसना के सदृश 'अमींचन्द',
कैसे बताये कि क्या रस उड़ाया ॥

—
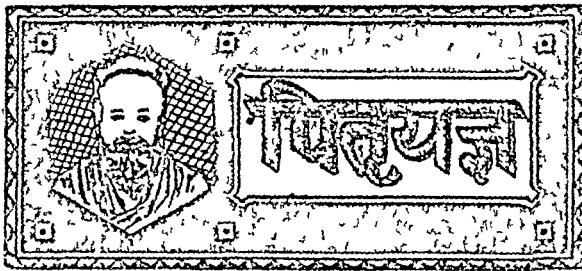
पितृयज्ञ को 'श्राद्ध' और 'तर्पण' भी कहते हैं। श्राद्ध शब्द "श्रत्" धातु (root) से बना है; जो सत्य का वाचक है। जिस काम से सत्य का ग्रहण किया जाय, वह 'श्रद्धा' और श्रद्धा से जो सेवा की जाय, वह "श्राद्ध" कहाता है। जिस कर्म से माता पितादि जीवित पितरों को तृप्त अर्थात् सुखयुक्त किया जाय, वह "तर्पण" है।

तर्पण, श्राद्ध विद्यमान प्रत्यक्ष पितरों का ही हो सकता है, मृतकों का नहीं,

क्योंकि मिलाप हुए बिना सेवा नहीं हो सकती। मिलाप जीतो का ही हो सकता है, मृतकों का नही। अतएव पितर शब्द से जीवित माता-पितादि बड़ों का अर्थ ग्रहण किया गया है।

पितृ-सेवा-प्रमाण

ओं ऊर्ज्ज वहन्तीरमृतं घृतं पयःकीलालम् परिस्रुतं स्वधास्थ तर्पयत मे पितॄन् ॥

अर्थ— हे ईश्वर परमात्मन्! (ऊर्ज्जं) बल-पराक्रम (वहन्ती) देने वाले (अमृतं) उत्तम रसयुक्त (घृतं) घी (पयः) दूध (कीलालं) पकवान (परिस्रुतम्) रस चूते पक्के फल (मे) मेरे (पितॄन) पितरों को (स्वधास्थ) प्राप्त कराके (तर्पयत) तृप्त करते रहो। जिससे वह सदा प्रसन्न होकर मुझ को सत्योपदेश सुनाते रहें।

३—पितर शब्द से पिता, माता, पितामह, मातामह, आचार्य, विद्वान् तथा ज्ञान मे वृद्ध माननीय पुरुषो का ग्रहण होता है ।

४ एक 'महा-पितृयज्ञ' भी होता है, जिसमे नीचे लिखे आठ प्रकार के पितरों की सेवा की जाती है ।

(१) सोमसद्-अर्थात् ब्रह्मविद्या के वेत्ता

(२) अग्निष्वात्त-कला-कौशल-ज्ञानवाले

(३) बर्हिषदाः-कृषि-विद्या के वेत्ता ।

(४) सोमपा-वैद्यराज ।

(५) हविर्भुजः-हवन-विद्या के वेत्ता ।

(६) आज्यपाः—पशु-विद्या के वेत्ता ।

(७) सुकालिका-ब्रह्म-विद्या के वेत्ता

(८) यमराज-अर्थात् न्याय के व्यवस्था बांधने वाले, पक्षपात को छोड़ कर न्याय करने वाले, शुद्धाचरण रखने वाले, राज सम्बन्धी अधिकारी पुरुष ।

* पितृयज्ञ समाप्त *

भूत यज्ञ

१ 'भूतयज्ञ' का नाम 'बलिवैश्वदेव यज्ञ, भी है, अर्थात् विश्वदेव जो परमेश्वर है, उसके निमित्त बलि देनेका यज्ञ

२. इसमे छ: जीवों अर्थात—

(१) कुत्ते (२) पतित (३) भङ्गी आदि चण्डाल (४) कुष्टी आदि रोगी (५) कौवे (६) चिऊंटी आदि कृमि-कीट के लिये लवणान्न, जैसे दात, भात, रोटी आदि की छः बलि दी जाती है।

३. बलिवैश्वदेव-यज्ञ मे प्रमाण।

अहरहर्बलिमित्ते हरन्तो,
ऽश्वायेव तिष्ठते घासमग्ने,
रायस्पोषेण समिषा मदन्तो,
मा ते अग्नेः प्रतिवेशारिषाम् ॥

अर्थ-हे अग्ने-परमेश्वर! जिस प्रकार शुभ इच्छा से हम लोग घोड़े के आगे खाने योग्य घास धरते हैं उसी प्रकार शुभ इच्छा से आपकी आज्ञानुसार नित्य प्रति बलिवैश्वदेव कर्म को प्राप्त होते हुए राज्य-लक्ष्मी और घी, दूध आदि पुष्टि-कारक पदार्थों से हम आनन्दित रहें। हे परमगुरो! अग्ने-परमेश्वर! हम लोग आप के विरुद्ध कभी न चलें और न अन्याय से किसी प्राणी को पीड़ित करें किन्तु सबको अपना मित्र समझ कर उनका हित करते रहें।

४-पूर्वोक्त ६ प्राणियों के लिये निम्न-लिखित ६ मन्त्रों से ६ बलि भूमि पर धरें।

(१) ओ३म् श्वभ्यो नमः;

(२) ओ३म् पतितेभ्यो नमः,

(३) ओ३म् श्वपचेभ्योः नमः,

(४) ओ३म् पापरोगिभ्यो नमः,

(५) ओ३म् वायसेभ्यो नमः,

(६) ओ३म् कृमिभ्यो नमः,

५- भोजन बनने पर घृत और मिष्टान्न मिश्रित भात, यदि भात न बना हो, तो खारा और लवणान्न का छोडकर जो कुछ ग्रास के समान हो, आगे लिखे दस मन्त्रों से अग्नि मे डाले जो चूल्हे से निकाल कर अलग रक्खी हो ॥

ओं अग्नये स्वाहा ॥१।

ओं सोमाय स्वाहा ॥२॥

ओं अग्निषोमाभ्यां स्वाहा ॥३॥

ओं विश्वेभ्यो देवेभ्योः स्वाहा ॥४॥
ओं धन्वन्तरये स्वाहा ॥५॥
ओं कुह्वै स्वाह ॥६॥
ओं अनुमत्यै स्वाहा ॥७॥
ओं प्रजापतये स्वाहा ॥८॥
ओं द्यावापृथ्वीभ्यां स्वाहा ॥९॥
ओं स्विष्टकृते स्वाहा ॥१०॥

अग्नि के लिये आहुति देते हैं ॥१॥
शान्तिस्वरूप ईश्वर के निमित्त० ॥२॥
अग्नि भगवान् जो जीवन का हेतु और दुःख विनाशक के निमित्त० ॥३॥
विश्वपति और जगत्-प्रकाशक ईश्वर के निमित्त आहुति देते हैं ॥४॥
रोग-नाशक के लिये आहुति देते हैं ॥५॥
अमावसी यज्ञपति के निमित्त० ॥६॥

प्रजापति ईश्वर के निमित्त० ॥७॥
सूर्यादि प्रकाशमान् और पृथ्वी आदि प्रकाश रहित लोको के साथ जो ईश्वर सदा वर्त्तमान् होकर उनको धारण कर रहा है, उसके निमित्त आहुति देते हैं ॥८॥
इष्ट सुखके दाता ईश्वर के निमित्त० ॥९॥

६-तत्पश्चात् निम्नलिखित सोलह मन्त्रों से सोलह दिशाओ आदि के लिये सोलह बलि पत्तल पर अथवा थाली मे धरें। यदि बलि धरते समय कोई अतिथि आ जावे तो उसी को दे दें।

बलि के लिये सोलह मन्त्र

ओ सानुगायेन्द्राय नमः ॥१॥ (पूर्व)
ओं सानुगाय यमाय नमः॥ २॥(दक्षिण)
ओं सानुगाय वरुणाय नमः॥ ३॥(पश्चिम)

ओं सानुगाय सोमाय नमः ॥४॥ (उत्तर)

ओं मरुद्भ्यो नमः ॥५॥ (द्वार)

ओं अद्भ्यो नमः ॥६॥ (जल)

ओं वनस्पतिभ्यो नमः ॥७॥ (मूसल, ऊखल)

ओं श्रियै नमः ॥८॥ (ईशान)

ओं भद्रकाल्यै नमः ॥९॥ (नैर्ऋत्य)

ओं ब्रह्मणे नमः ॥१०॥ (मध्य)

ओं वास्तुपतये नमः ॥११॥ (मध्य)

ओं विश्वेभ्यो देवेभ्यो नमः ॥१२॥

ओं दिवाचरेभ्यो भूतेभ्यो नमः ॥१३॥

ओं नक्तंचारिभ्यो भूतेभ्यो नमः ॥१४॥

ओं सर्वात्मभूतये नमः ॥१५॥ (पीछे)

ओं पितृभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः १६

इन्द्र ईश्वर के अनुयायी ऐश्वर्य-युक्त पुरुषो को नमस्कार हो ॥१॥

यम ईश्वर के अनुयायी सांसारिक न्यायाधीशो को नमस्कार हो ॥२॥

ईश्वर-भक्तों को नमस्कार हो ॥३॥

पुण्यात्माओं को नमस्कार हो ॥४॥

प्राणपति ईश्वर को नमस्कार हो ॥५॥

सर्वव्यापक प्रभु को नमस्कार हो ॥६॥

वनस्पतियो के स्वामी को नमस्कार हो॥७॥

पूजनीय ऐश्वर्ययुक्त को नमस्कार हो ॥८॥

कल्याणकारक शक्ति को नमस्कार हो॥९॥

वेद के स्वामी प्रभु को नमस्कार हो॥१०॥

ईश्वर को नमस्कार हो ॥११॥

विश्वपति और प्रकाशस्वरूप ईश्वर को नमस्कार हो ॥१२॥

दिन मे विचरने वाले प्राणियों का सत्कार हो ॥१३॥

रात्रि में विचरने वाले प्राणियों का सत्कार हो ॥१४॥

सर्वव्यापक को नमस्कार हो ॥१५॥

ज्ञानियों और स्वधा--हविदान के अधिकारियों को नमस्कार हो ॥१६॥

१—'अतिथियज्ञ' को ही 'नृयज्ञ' कहते हैं। जो विद्वान्, परोपकारी, जितेन्द्रिय, सत्यवादी, छल-कपट-रहित, धार्मिक पुरुष देशाटन करता हुआ, अकस्मात् घर में आजावे, वह "अतिथि" कहाता है। ऐसे अतिथि का आदर-सत्कार करके उससे सत्य उपदेश ग्रहण करने को 'अतिथि-यज्ञ' कहते हैं।

प्रमाण

ओं तद्यस्यैव विद्वान् व्रात्यो,

ऽतिथिर्गृहानागच्छेत्

ओं स्वयमेनमभ्युपेत्य ब्रूयाद्,

व्रात्य ! क्वावात्सी, व्रात्योदकं,

व्रात्य ! तर्प्पयन्तु,

व्रात्य ! यथा ते प्रियं तथास्तु,

व्रात्य ! यथा ते वशस्तथास्तु,

व्रात्य ! यथा ते निकामस्तथास्त्विति॥

अर्थ-जब विद्वान् घर मे आ जावे, तब गृहस्थी स्वयं उठकर सम्मान-पूर्वक उसे मिले। उत्तम आसन पर बिठाकर पूछे, हे व्रात्य-उत्तम पुरुष ! आपका निवास स्थान कहां है ? जल लीजिये, हाथ मुंह धोइए। हम लोग प्रेम-भाव से आपको तृप्त करेंगे। जो पदार्थ आपको प्रिय हों, वही हम उपस्थित करेंगे। आपकी

इच्छा को पूर्ण करेंगे। जैसी आप की कामना हो, वैसी ही होगा ॥२॥

४४—प्यारे प्रभु से मिलाप

प्रातः और सायं सन्ध्या वा हवन के पश्चात् प्रत्येक नर-नारी को अपने भक्ति भाजन परमेश्वर से मिलाप करना चाहिये। उस समय उदार-हृदय से उस महाप्रभु से प्रार्थना करे, जो आपके रोम-रोम मे रम रहा है। जैसे पुत्र पिता से अपने मन की प्रत्येक कामना प्रकट कर देता है, वैसे आप भी उस पिता को साक्षात् करके, उससे अपनी प्रत्येक शुभ-इच्छा प्रकट करो जो कुछ मांगना है, उससे मांगो। वह आपकी प्रत्येक शुभ इच्छा पूरी करेगा। सच्ची श्रद्धा और विश्वासयुक्त प्रार्थना से हृदय मे शान्ति की धारा और आत्मा मे

आनन्द की वृष्टि होगी और थोड़े काल के अभ्यास से ही आपको अनुभव होगा, कि आप के जीवन मे प्रतिदिन कितना परिवर्त्तन हो रहा है। पाठकों की सुगमता के लिये दो-चार प्रार्थनायें नीचे लिखी जाती हैं। अपने पुरुषार्थ के अनन्तर परम-देव परमात्मा से सहायता की इच्छा करना 'प्रार्थना' है। वास्तव में प्रार्थना वेद मन्त्रों द्वारा ही करनी चाहिये। अपने शब्दों द्वारा की हुई प्रार्थना में उतना बल कदापि नहीं आ सकता। परन्तु, वेद-मन्त्रों का रटना मात्र भी पर्याप्त नहीं। प्रत्येक शब्द में जो उसका अर्थ है, उस शब्द के साथ ही उस अर्थ का ध्यान करना चाहिये। इस लिये यहां कुछ मन्त्र देकर इनका अर्थ तथा व्याख्या दी जाती हैं।

प्रार्थना

ओं स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणम्,
अस्नाविरꣳ शुद्धमपापविद्धम्
कविर्मनीषी परिभूः स्वयंभूर्याथातथ्यतो
ऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥१॥
न तत्र चक्षुर्गच्छति,
न वाग्गच्छति नो मनः ॥२॥
यस्यामतं तस्य मतं,
मतं यस्य न वेद सः ।
अविज्ञातं विजानतां,
विज्ञातमविजानताम् ॥३॥
त्वं हि नः पिता,
वसो ! त्वं माता ।

शतक्रतो ! बभूविथ,
अथा ते सुम्नमीमहे ॥४॥
सर्वे भवन्तु सुखिनः,
सर्वे सन्तु निरामयाः,
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु,
मा कश्चित् दुःखभाग्भवेत् ॥५॥

भगवान् ! आप हमारे परम पिता हो, सर्वदा सुख के देने वाले हो । दुष्टों के अत्याचार से बचा कर हम को स्थिर रहने वाला सुख प्रदान कीजिये । हमको उत्तम बुद्धि और पराक्रम प्रदान कीजिये, हम जो कुछ मांगेंगे, आप ही से मांगेंगे, क्योंकि सब सुखों के दाता आप ही हैं । हम को केवल मात्र आप का ही आश्रय है ॥१॥

हे दयामय ! आप ऐसी कृपा करें कि हम आप को छोड कर और किसी के द्वार पर न जाये। आपका स्वभाव है कि आप अपने शरणागत को नही त्यागते, वरन् सदैव रक्षा करते हैं। हमें भी पूर्ण निश्चय है, कि आप हमारी प्रार्थना अवश्य स्वीकार करेगे ॥२॥

भगवान् ! आप ऐसे कृपालु और दयालु हैं कि जो पुरुष तन, मन और धन से आपकी भक्ति करता है, आप उसको न केवल इस लोक मे निहाल करते हैं, वरन् परलोक मे भी सुखी करके प्रसन्न करते हैं। आप अपने भक्त को ब्रह्मचर्य [illegible] स्थिर करके उसको ज्ञान, विज्ञान [illegible] धन से पूर्ण करके, परलोक की [illegible]सद्धि प्रदान करते हैं ॥३॥

प्रभो ! आप ऐसी कृपा करे कि आप

हमारे हृदय से कभी न बिसरें, जिससे कि हम निष्पाप होकर सदा आनन्दित रहें।

भगवान्! जो आप को आत्म-समर्पण करते हैं, वे सदा ही निष्पाप होकर आपके प्रदान किये हुए पूर्ण परमानन्द को चिरकाल तक भोगते हैं ॥४॥

पिता! आपकी कृपा से हमारी वाणी सब को पवित्र करने वाली और वेदोक्त कर्मों के प्रकट करने वाली हो, इसके लिये हम वेदोक्त कर्म करते हुए आपकी स्तुति, प्रार्थना और उपासना करते रहें। उत्तम कर्मों में रुचि दिलाने वाले और उन का फल देने वाले केवल मात्र आप ही हो ॥५॥

हे सर्व-पालक, सर्व-पोषक! जड़ और चेतन जगत् के रचने वाले पिता! जिस प्रकार आप अपने उत्तम ज्ञान से हमारी बुद्धि

को निर्मल बनाते हैं, उसी प्रकार हमारे शरीर की भी रक्षा कीजिये, और इस को सदा रोग-रहित रखिये। जिस से आप का उत्तम ज्ञान हमारे मन, वाणी और शरीर द्वारा प्रकट होता रहे। आप निष्काम हो, हमे भी निष्काम बनाइए। हम वैदिक कर्मों को इकट्ठे मिलकर प्रीति-पूर्वक निष्काम होकर करते रहे। हम में वेदपाठी और तेजस्वी ब्रह्मण हों, जो हिंसक दुष्ट स्वभाव वाले असुरों से हमारी रक्षा करते रहे जिस से हम सब प्रकार से निर्भय होकर आपकी सेवा मे तत्पर हों।

प्यारे पिता! आप की कृपा से हम सब सुखी रहें। सब भद्र देखें। कल्याणकारी पदार्थ देखे। हम मे से एक भी दुःख का भागी न बने।

२—प्रार्थना

ओं तदेजति तन्नैजति,
तद्दूरे तद्वन्तिके ।
तदन्तरस्य सर्वस्य,
तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः ॥१॥

दिव्यो ह्यमूर्तः पुरुषः,
स बाह्याभ्यन्तरो ह्यजः ।
अप्राणो ह्यमनः शुभ्रो,
ह्यक्षरात्परतः परः ॥२॥

इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति,
न चेदिहावेदीन् महती विनष्टिः ।
भूतेषु भूतेषु विचिन्त्य धीराः,

प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति ॥३॥

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्-
छिद्यन्ते सर्वसंशयाः ।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि,
तस्मिन् दृष्टे परावरे ॥४॥

प्रियं मा कृणु देवेषु,
प्रियं राजसु मा कृणु ।
प्रिय सर्वस्य पश्यत,
उत शूद्र उतार्ये ॥५॥

भगवान्! आप अनन्त कल्याण-युक्त गुणों से परिपूर्ण हो । आप इस सारे जगत् के चक्र को चला रहे हो, और स्वयं एक-रस सर्वत्र परिपूर्ण हो । दूर

से दूर और निकट से निकट हो। आप की शरण त्याग कर जीव सारे जगत् मे भटकते है, कहीं विश्राम नहीं मिलता। जो आपको भूले हुए हैं, उन से आप अत्यन्त दूर है, पर जो आप की शरण मे आन पड़े हैं, उनके सदा निकट, हृदय के भीतर ही विराजमान हो; वे अपने हृदय के द्वार खोल कर आत्मा द्वारा आप के दर्शन करते हैं। आप सब के भीतर तथा बाहर हो और सब से न्यारे हो।

ओं सह नाववतु,

सह नौ भुनक्तु,

सह वीर्य्यं करवावहै।

तेजस्विनावधीतमस्तु,

मा विद्विषावहै ।

एक चीटी से लेकर बड़े हाथी तक सब तारागण, ग्रह, उपग्रह, चान्द, सूर्य, धूम्र-केतु जो आकाश मे चक्कर खा रहे हैं, सब जीव-जन्तु, पशु, मनुष्य तथा नाना प्रकार के फल-फूल और वनस्पति आप के ही उत्पन्न किये हुए हैं । जल और पवन के स्थल सब आप की महति महिमा के शब्द गा रहे हैं ।

स्वामिन् ! आपके बिना हमारा और कौन है ? विपद्-काल मे आप ही आश्रय हो, आप ही शान्ति-दाता हो । नमस्कार हो, उस अन्तर्यामी, अनाथों के नाथ को, जो क्लेशों को दूर करता

है और अपनी परम-शक्ति से भोजन देता है। वन्दना और प्रणाम हो उस नित्य शुद्धिदाता को, जिसकी दया से परम आनन्द प्राप्त होता है। वन्दना हो रोग-विनाशक स्वामी, और सर्वान्तर्यामी महान् पिता को, जिसका राज्य अटल है, जिसकी शक्ति अटल है, जिसका सामर्थ्य अटल है।

त्रिलोकी के नाथ ! हम आप के पांव पड़ कर वरदान मांगते हैं कि आप कृपा करके हमें शुद्ध मति दीजिये, सुबुद्धि अर्पण कीजिये और मानसिक दृढ़ता दीजिये। जो दुःख, जो कष्ट हम को पहुंचे उनसे व्याकुल हो कर शुद्ध और पवित्र मार्ग को न भूल जायें। चाहे जगत् हमारी दुर्दशा भी करे, चाहे हमारा नाम भी घटे, परन्तु

हमारी सदा यही अभिलाषा रहे कि हम आप की आज्ञा को पाले, सन्मार्ग के यात्री हों, सत्य ही सुने, सत्य ही कहे और सत्य ही वरते, तब ही हम आप की कृपा सम्पादन करने के योग्य होगे। हे रोगविनाशक स्वामिन्! सदव हमारी श्रद्धा आप की भक्ति मे रहे हमारी विद्या बढ़े, हमारा पढा-पढ़ाया सफल हो।

ओ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

३-प्रार्थना

ओं सहस्रशीर्षा पुरुषः,

सहस्राक्षः सहस्रपात्।

स भूमिꣳ सर्वतस्पृत्वा-

ऽत्यतिष्ठद्दशांगुलम् ॥१॥
यतो वाचो निवर्तन्ते,
अप्राप्य मनसा सह ।
आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान्,
न बिभेति कदाचन ॥२॥
अनाद्यनन्तं कलिलस्य मध्ये,
विश्वस्य स्रष्टारमनेकरूपम् ।
विश्वस्यैकं परिवेष्टितारं,
ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः ॥३ ॥
यतो यतः समीहसे,
ततो नो ऽभयं कुरु ।
शन्नः कुरु प्रजाभ्यो-

ऽभयं नः पशुभ्यः ॥४॥

सख्ये त इंद्र वाजिनो,

मा भेम शवसस्पते ।

त्वामभि प्रणोनुमो,

जेतारमपराजितम् ॥५॥

भगवान् ! आप निर्भय और निर्दोष हैं । आप सर्वशक्तिमान् हैं । आप सत्य-स्वरूप और सदा एक-रस रहने वाले हैं । सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, बिजली, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी सभी आप की महिमा का गान कर रहे है, सब ही आपका सन्देश सुना रहे हैं, सब ही हाथ जोड़ आप की स्तुति कर

रहे हैं । यह जीव-जन्तु, पत्ती, कीट-पतङ्ग सभी आप की दया के प्रशंसक हैं। सभी आप की पूजा मे मग्न हैं । सभी आप के द्वार के भिक्षुक हैं । अनेक प्रकार के फल-फूल, कन्दमूल, अन्न, औषधियां सब ही मुक्त-कण्ठ से आप के हित और दया को प्रकट कर रहे हैं ।

भगवान् ! आप ही सब के इष्टदेव हो, आप ही पूजा के योग्य हो । पृथ्वी से लेकर सूर्य पर्यन्त सब अद्भुत रचना आप ही के गुप्त हाथों से रची गई है ।

भगवान् ! जैसे आप महान् तथा विचित्र हैं वैसे ही आप के काम महान् तथा विचित्र हैं । हे देवों के देव महादेव ! आप धर्म, न्याय और प्रेम के केन्द्र हैं, यह रचना भी धर्म, न्याय और प्रेम को

प्रकट कर रही है। आप का ज्ञान पूर्ण और सदा एक रस रहने वाला है। आप की बुद्धि, आप की दया और आप के कार्य्य महान है। कौन आप तक पहुंच सकता है? कौन आपका पारावार पा सकता है?

महाराज! आप का क्रोध हमारी मृत्यु और आप की प्रसन्नता हमारा जीवन ।हम भूल कर भी मन, वाणी और से आप को अप्रसन्न न करें। लत, इन्द्रिय-दमन, विजय और यह हमे बहुत बड़ी संख्या में कीजिये, जिससे कि हम आप सदा प्रसन्न करते रहें।

भगवान्! आप सदा हमारी रक्षा करते है। हमें सब प्रकार के सुख से भरपूर रहें। हम आप को भूल जाते

हैं, परन्तु आप हमारा कभी त्याग नहीं करते।

महाराज ! हम पर कृपा करो, हम आत्मा के शब्द को ध्यान से सुनें। यह जीवन सदा ही निष्पाप रहे। आप की सौम्यमूर्ति का ही प्रकाश होता रहे। हम आप के उपकार का सदा धन्यवाद करते रहें।

महाराज ! आप के सेवक यह मांगते हैं कि आज से मन, वाणी, शरीर और आत्मा सब ही आप की पूजा में लगे रहें। हमारा समय, हमारी स्मरण शक्ति, हमारे कर्म सभी उज्ज्वल और स्वच्छ हों। यह सब मिल कर आत्मा का कल्याण करने वाले हो।

महाराज ! आज से हम अपने अधिकार हटा कर इनको आपके ही चरणों

मे समर्पण करते हैं। आप ही इन से यथायोग्य काम लें। आप ही हमारे परम गुरु, परम सहायक और परम रक्षक है। आप के द्वार को छोड़ कर अब कहां जाये। आप ही हमारे रक्षक हैं। आपकी रक्षा मे आये हुए को दुःख और भय कहां हो सकता है? आपके चरणो मे समर्पण किये हुए मन, वाणी और शरीरादि की विभूति को कौन चुरा सकता है? आप का क्रोध वहां ही होता है जहां आप का अधिकार नही माना जाता। बस! आज से हम अपने आप को आप के पवित्र चरणों मे समर्पण करके विनय-पूर्वक प्रार्थना करते हैं कि आप हमे स्वीकार करें॥

ओं शाति! शाति!! शाति!!!

४—प्रार्थना

स विश्वकृद् विश्वविदात्मयोनिः,
ज्ञः कालकालो गुणी सर्वविद् यः ।
प्रधान क्षेत्रज्ञपतिर्गुणेशः
संसारमोक्षस्थितिबन्धहेतुः ॥१॥
बृहच्च तद्दिव्यमचिन्त्यरूपं,
सूक्ष्माच्च तत्सूक्ष्मतरं विभाति ।
दूरात्सुदूरे तदिहान्तिके च,
पश्यत्स्विहैव निहितं गुहायाम् ॥२॥
सर्वतः पाणिपादं तत्,
सर्वतोऽक्षिशिरो मुखम् ।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके,
सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥३॥

यो भूतञ्च भव्यञ्च,

सर्वं यश्चाधितिष्ठति ।

स्वर्यस्य च केवलं,

तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥५॥

हे सर्वाधार परमात्मन् ! जो कुछ भूत, भविष्यत् और वर्तमान मे है, उस सब के अधिष्ठाता आप हो । वायु आपकी आज्ञा मे चलती है और अग्नि आप के नियम मे जलती है। आपके शासन मे सूर्य और चन्द्रमा चमकते है, मेघ बरसता है। आप उन सब के जीवन दाता हो, जो आंख खोलता है और सांस लेता है। आप सब के प्राणाधार और प्राणपति हो । आप इस सारे

जगत् से परे केवल सुखस्वरूप हो, हमारा प्रणाम आप को हो। आप सब से ज्येष्ठ और सब से श्रेष्ठ हो, आप को प्रणाम हो।

हे हृदय के स्वामिन्! आप राजाओं के अधिराज हो, आपके पास रीते हाथ किस भांति आवें, क्या लेकर आवें? सब कुछ तो आपका दिया है, हमारा प्राण, हमारी इन्द्रियां सब आपकी दी हुई हैं। आत्मा के भी आप ही स्वामी हो, हमारा सब कुछ आपका है। प्रीति के पुष्प आपके चरणों में रखते हैं, और कृतज्ञ बन कर आपके निकट आते हैं। आप की भेंट के लिये जो हमारे पास है, वह आप से पाया है, आपकी भेंट करते हैं। स्वीकार करो, और मुझे अपना अनुगत बना लो।

हमारा सर्वस्व आप के कार्य मे लगे। हमारा सारा परिवार आप की इच्छा के आधीन हो। आप के सहवास में सच्चे सुख को भोगें। हमारे छोटे बड़े तरुण और शिशु, पिता और भ्राता सब आनन्द मे रहे। हमारे शरीरों को कभी क्लेश न हो। आप की इच्छा में हमारा हृदय एक हो। हम एक दूसरे को प्यार करे, पुत्र पिता का अनुगामी हो, माता का सेवक बने। पत्नी पति के प्रति मीठा और शान्ति-युक्त व्यवहार करे। हम सब एक होकर आप के नाम की महिमा गायें। विद्वानों में द्वेष मिट जावे। सब एक परिवार बन कर रहें। वेद का उपदेश हमारे घर मे हो। हम उन्नति के मार्ग में आगे बढ़ते हुए एक-चित्त हो कर आप

की आराधना करें। हम एक हों, वैर-विरोध से बचे रहे। हमारी वाणी में मिठास हो, दृष्टि मे प्यार और हृदय मे विश्वास हो। हमारा अन्न और जल एक हो, हम सब एक स्नेह-पाश में बन्धे हुए आप ही को पूजा का केन्द्र बनावे। सायं-प्रातः आप के चरणों का आश्रय लें। हमारा सर्वस्व आप के अर्पण हो, हमारा सारा परिवार आप का बन कर रहे। आप की इच्छा से मृत्यु से पार हो कर, अमृत को प्राप्त करें। आप की ही शरण पकड़ कर हम कहे "आप हमारे हो, और हम आप के है"।

ओं शांतिः। शांतिः।। शांतिः।।।

१. प्रभु-भक्ति के भजन

ईश्वर का जप जाप रे मन,
वृथा काहे को जन्म गंवावे ॥१॥
दीनानाथ दयालु स्वामी,
प्रकट सब जा आप रे ॥२॥
सर्व व्यापक की पूजा कर,
दूर होवें दुःख ताप रे ॥३॥
कर सन्ध्या और पढ़ गायत्री,
मिट जावे सन्ताप रे ॥४॥
छोड असत् को सत् ग्रहण कर,
नष्ट होवे सब पाप रे ॥५॥
खुश होकर प्रभु बिनती सुन लें,
'बेकस' करे विलाप रे ॥६॥

२. भजन

शरण प्रभु की आवो रे ।
यही समय है प्यारे ॥१॥
छल कपट और झूठ को त्यागो ।
सत्य में चित्त लगावो रे ॥२॥
उदय हुआ ओम् नाम का भानु ।
आवो दर्शन पावो रे ॥३॥
पान करो इस अमृत जल को ।
उत्तम पदवी पावो रे ॥४॥
हरि की भक्ति बिन नहीं मुक्ति ।
दृढ़ विश्वास जमावो रे ॥५॥
मानुष जन्म अमोलक है यह ।
वृथा न इस को गंवावो रे ॥६॥
कर लो नाम हरि का सिमरन ।
अन्त को न पछतावो रे ॥७॥
धन्य दया जो सब को पाले ।
मत उस को विसरावो रे ॥८॥
छोटे बड़े सब मिल कर खुशी से ।
गुण ईश्वर के गावो रे ॥६॥

४—आरती

जय जगदीश हरे, पिता जय जगदीश हरे।
भक्त जनन के सङ्कट क्षण मे दूर करें॥
जो ध्यावे फल पावे, दुःख विनशे मन का।
सुख सम्पति घर आवे, कष्ट मिटे तन का॥
मात-पिता तुम मेरे, शरण गहूं किस की।
तुम बिन और न दूजा, आश करूं जिसकी॥
तुम पूरण परमातम, तुम अन्तर्यामी।
पारब्रह्म परमेश्वर, तुम सब के स्वामी॥
तुम करुणा के सागर, तुम पालन कर्त्ता।
दीन दयालु कृपालु, कृपा करो भर्त्ता॥
तुम हो एक अगोचर, सब के प्राणपति।
शुद्ध करो मम हृदय, धर्म मे होवे गति॥
दीनबन्धु दुःखहर्त्ता, तुम रक्षक मेरे।
अपने हाथ उठावो, द्वार पडा तेरे॥
विषय विकार मिटाओ, पाप हरो देवा।
श्रद्धा भक्ति बढ़ाओ, सन्तन की सेवा॥

ईश्वरोपासना

'उप' समीप 'आसना'-बैठना—जब कि जीवात्मा परमात्मा के साक्षात् दर्शन करने के लिये उसके समीप बैठता है। उपासना की विधि यह है कि एकान्त स्थान में बैठ कर अपने मन को शुद्ध करके आत्मा में स्थिर करें, और बार-म्बार वेद मन्त्रों का अर्थ-सहित मन मे पाठ करके भगवान् की महिमा का गान करें। ऐसा अनुभव करें कि मानो परमात्मा के सद्गुण हृदय में आ रहे हैं। उपासना के कुछ मन्त्र अर्थ-सहित नीचे दिये जाते हैं।

अष्टाविंशानि शिवानि
शग्मानि सहयोगं भजन्तु मे
योगं प्रपद्ये क्षेमं च,

नमो ऽहोरात्राभ्यामस्तु ॥१॥

हे परमैश्वर्ययुक्त, मंगलमय, परमेश्वर! आप की कृपा से मुझको उपासना-योग प्राप्त हो; उससे मुझको सुख मिले। आप की कृपा से दश इन्द्रिय, प्राण, मन, बुद्धि, चित्त अहंकार, विद्या, स्वभाव, शरीर और बल यह अट्ठाईस उपासना सदा करें, हम लोग आपको नमस्कार करते हैं ॥१॥

क्षेमं प्रपद्ये योगं च,
भूयानरात्याः शच्याः,
पतिस्त्वमिन्द्रासि।
विभूः प्रभूरिति,
त्वोपास्महे वयम् ॥२॥

हे जगदीश्वर! आप मन, वाणी और कर्म

इन तीनों के पति हैं, सर्वशक्तिमान् आदि विशेषणों से युक्त हैं। आप दुष्ट प्रजा, मिथ्या वाणी और पाप कर्मों को नष्ट करने में अत्यन्त समर्थ हैं। आप को सर्वव्यापक और सर्व सामर्थ्य वाले जान कर हम लोग आप की उपासना करते हैं ॥२॥

ते अस्तु पश्यते मा पश्यते।
अन्नाद्येन यशसा तेजसा ब्राह्मवर्चसेन ३

अन्न आदि ऐश्वर्य, उत्तम कीर्ति, भय से रहित, विद्या से युक्त, हम लोगों को करें, हम सदा आप की उपासना करते रहे ॥३॥

अम्भो अमो महः सह,
इति त्वोपास्महे वयम् ॥४॥

हे भगवान्! आप सर्व-व्यापक, शान्ति-स्वरूप, प्राण के भी प्राण हैं। सब के पूज्य, सब से बड़े और सहनशील हैं। हम आप की उपासना करते हैं ॥४॥

अम्भो अरुण रजतं रजः सह,
इति त्वोपास्महे वयम् ॥५॥

आप प्रकाश-स्वरूप, दुःखनाशक, आनन्द स्वरूप, ऐश्वर्य से युक्त और सहनशील हैं। हम आपकी उपासना करते हैं ॥५॥

उरुः पृथुः सुभूर्भुव,
इति त्वोपास्महे वयम् ॥६॥

आप बल वाले, आदि-अन्त-रहित सब पदार्थों मे वर्तमान और अवकाश-स्वरूप से सब के निवास-स्थान हैं।

हम उपासना कर के आप के ही आश्रित रहते हैं ॥६॥

अथा परो व्यचो लोक,
इति त्वोपास्महे वयम् ॥७॥

परमात्मन! आप जगत् में प्रसिद्ध और उत्तम हैं। इसका धारण, पालन और क्षय करने वाले तथा जानने के योग्य केवल आप ही हैं, दूसरा कोई नहीं।

भजन ४

तेरो नाम ओंकार, कोऊ न पा सके है पार।
महा-मुनीश गये हार, गाय-गाय ध्याय ध्याय॥
सत्‌चित् आनन्द-स्वरूप, बिना रंग रहित-रूप
तू अनूप जगत्-भूप निराकार निर्विकार॥
अजरअमर नित्य अभय, परब्रह्म अखण्ड अक्षय
शुद्ध, बुद्ध, मंगलमय, तू अपार तू अपार॥
तू अभेद तू अछेद, सर्व शास्त्र कहत वेद।
'नवलसिंह' कहे पुकार, कोउ नकह सके विस्तार

धर्म के लक्षण

धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः

अर्थात् जो पुरुष धर्म का नाश करता है, धर्म उसका नाश करता है और जो धर्म की रक्षा करता है, धर्म भी उसकी रक्षा करता है। धर्म ही मनुष्य का सच्चा संगी है।

धर्म क्या है? आर्य स्मृतिकार मनु-महाराज ने धर्म का निम्न प्रकार से लक्षण किया है—

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं
शौचमिन्द्रिय निग्रहः
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो
दशकं धर्म लक्षणम्।

धर्म के दस लक्षण हैं—धृति (धैर्य) क्षमा (अपराधी के प्रति उदारता) दम (शरीर, इन्द्रियों और मन पर संयम) अस्तेय (चोरी न करना) शौच (पवित्रता) इन्द्रिय-निग्रह (इन्द्रियों को वश में रखना) धी (बुद्धि) विद्या (ज्ञान) सत्य (सच्चाई) अक्रोध (गुस्से में न आना)

धार्मिक जीवन व्यतीत करने के लिए मनुष्य को धर्म के इन दसों लक्षणों पर आचरण करना चाहिए।

स्वाध्याय की महिमा

स्वाध्यायाद् योगमासीत्,
योगात्स्वाध्यायमासनेत्।
स्वाध्याययोगसम्पत्त्या,
परमात्मा प्रकाशते ॥ १ ॥

स्वाध्याय से मनुष्य योग को धारण करे। योग से स्वाध्याय का मनन करे। दोनों को पालन करने से परमात्मा अन्तः करण में प्रकाशित होते हैं ॥१॥

यथा-यथा हि पुरुषः,
शास्त्रं समधिगच्छति ।
तथा-तथा विजानाति,
विज्ञानं चास्य रोचते ॥२॥

ज्यों-ज्यों पुरुष शास्त्र को पढ़ता है त्यों-त्यो उसका ज्ञान बढ़ता जाता है, और विज्ञान रुचिकर होता है ॥२॥

योग-शास्त्र की टीका मे महर्षि व्यास लिखते हैं, कि मोक्ष-शास्त्र वा आत्मा-शास्त्र का पाठ करना 'स्वाध्याय' कहाता है।

वेदों के मन्त्र जिनमे आत्मा और पर-

आत्मा सम्बन्धी विषय हैं, उपनिषदें, योगदर्शन, वेदान्त दर्शन, गीता, ऋग्वेदादि-भाष्य-भूमिका के प्रार्थना, स्तुति और उपासना के विषय, सत्यार्थ-प्रकाश का नवम समुल्लास, ये सब विशेष-रूप से स्वाध्याय के लिये उपयोगी ग्रन्थ हैं। स्वाध्याय से ज्ञानमार्ग की ओर मनुष्य बढ़ता है। यथार्थ ज्ञान ही मुक्ति का सच्चा द्वार है। स्वाध्याय के करने से सब इष्ट पदार्थ प्राप्त होते हैं। ईश्वर की असंख्य शक्तियां स्वाध्याय-शील मनुष्य की पूरी सहायता करती हैं। इस से ऋषि-ऋण दूर होता है। स्वाध्याय से हम प्रति-दिन प्रातःकाल ऋषि मुनियों से मिलाप कर सकते हैं। ऋषि दयानन्द अपने अन्त के दिनों तक स्वाध्याय करते रहे थे।

स्वाध्याय नित्य प्रातः काल जिस प्रकार भी हो सके थोड़ा-बहुत समय निकाल कर करना चाहिये । स्वाध्याय बुद्धि को तीव्र और आत्मा को उज्ज्वल बनाता है।

स्वाध्याय के लिये कुछ मन्त्र

प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्त-
रजायमानो बहुधा विजायते ।
तस्य योनिं परिपश्यन्ति धीरा-
स्तस्मिन् ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा । १

जो प्रजापति अर्थात् सब जगत् का स्वामी है, वही जड़ और चेतन के भीतर और बाहर अन्तर्यामी रूप से सर्वत्र व्याप्त हो रहा है। जो सब जगत् को उत्पन्न करके अपने आप सदा अज-

न्मा रहता है, जो उस परब्रह्म की प्राप्ति का कारण, सत्य का आचरण और सत्य-विद्या है, उस को विद्वान् लोग प्राप्त करके परमेश्वर को प्राप्त होते हैं। जिसमें यह सब लोक ठहर रहे हैं, उसी परमेश्वर के, ज्ञानी लोग भी सत्य-निश्चय से, मोक्ष-सुख को प्राप्त होकर, जन्म-मरण आदि से छूट कर, आनन्द में सदा रहते हैं।

यो देवेभ्य आतपति,
यो देवानां पुरोहितः।
पूर्वो यो देवेभ्यो जातो,
नमो रुचाय ब्राह्मये ॥२॥

जो परमात्मा विद्वानों के लिये सदा प्रकाशस्वरूप हैं अर्थात् उनके आत्माओं

को जो प्रकाशमय कर देता है, वह उनका पुरोहित अर्थात् अत्यन्त सुखों के धारण और पोषण करने वाला है, उस सब से आदि आनन्दस्वरूप और सत्य मे रुचि कराने वाले ब्रह्म को नमस्कार हो ॥२॥

रुचं ब्राह्मं जनयन्तो,
देवाग्रे तदब्रुवन् ।
यस्त्वैवं ब्राह्मणो विद्यात्,
तस्य देवा असन् वशे ॥३॥

जो ब्रह्म का ज्ञान है, वही आनन्द देने वाला, और उस मनुष्य की उस मे रुचि, बढ़ाने वाला है । जिस ज्ञान को विद्वान् लोग अन्य मनुष्यों के

आगे उपदेश करके उनको आनन्दित कर देते हैं; जो मनुष्य इस प्रकार से ब्रह्म को जानता है, उसी विद्वान् के सब मन आदि इन्द्रिय वश में हो जाते हैं, अन्य के नहीं ॥३॥

यत्परममवमं यच्च मध्यमम्,
प्रजापतिः ससृजे विश्वरूपम् ।
कियता स्कम्भः प्रविवेश तत्र,
यन्न प्रविशत् कियत्तद्बभूव ॥४॥

जो उत्तम, मध्यम और नीच स्वभाव से तीन प्रकार का जगत् है, उस सब को परमेश्वर ने ही रचा है । उसने इस जगत् में नाना प्रकार की रचना की है और वही इस सब रचना को यथावत् जानता है, इस जगत् में जो विद्वान्

होते हैं, वे भी कुछ-कुछ परमेश्वर की रचना के गुणों को जानते हैं । वह परमेश्वर सब को रचता है । आप रचना मे कभी नहीं आता ॥४॥

सुभाषित रत्नावली

१. सत्यं वद ॥ सत्य बोल ॥१॥
२. धर्म्मं चर ॥ धर्म पर चल ॥२॥
३. मा गृधः ॥ लालच मत करो ॥३॥
४. ओं क्रतो स्मर ॥
 हे जीव ! ओ३म् का जाप कर ॥४॥
५. क्लिवे स्मर ॥जाप शक्ति के लिये कर॥५॥
६ कृतं स्मर ॥किये कर्म को याद कर॥६॥
७. मनः सत्येन शुध्यति ॥
मन सत्य बोलने से शुद्ध होता है ॥७॥
८. वर्जयेत् मधु मांसं च ॥

मांस और मद्य को छोड़ दो ॥८॥

९. अश्मा भव॥पत्थर की न्याईं दृढ़ हो॥९॥

१०.परशुर्भव॥कुल्हाड़े के समान हो॥१०॥

११.अश्मानं तन्वं कृधि ॥

शरीर को व्यायाम से पत्थर बना लो ॥११॥

१२.घृतेन तन्वं वर्धस्व ॥

घी से शरीर को बढ़ाओ ॥१२॥

१३.विद्या धर्मेण शोभते ॥

विद्या धर्म से शोभा देती है ॥१३॥

१४.विद्या विहीनः पशुभिः समानः ॥

विद्या के बिना मनुष्य पशु समान है॥१४॥

१५.क्षमा वीरस्य भूषणम् ॥

क्षमा वीर पुरुष का भूषण है ॥१५॥

१६.पुरा जरसा मा मृथा ॥

बुढ़ापे से पहले मत मर ॥१६॥

१७.यतेमहि स्वराज्ये ॥

स्वराज्य प्राप्ति मे हम यत्न करें ॥१७॥

१८.सत्य वदयामि नानृतम् ॥

सत्य ही सदा बोलूंगा, झूठ नहीं ॥१८॥

१९.सत्यमेव जयते नानृतम् ॥

सत्य की जय होती है, झूठ की नहीं॥१९॥

२०.यतो धर्मस्ततो जय ॥

जहां धर्म है वहीं जय है ॥२०॥

२१.न रिष्येत्त्वावत: सखा ॥

ईश्वर का मित्र कभी नष्ट नही होता॥२१॥

२२.वय जयेम त्वया युजः ॥

हम आपके साथ मिले हुए जीते ॥२२॥

२३.तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥

सर्वश्रेष्ठ ब्रह्म के लिये नमस्कार हो॥२३॥

२४.ईशावास्यमिदं सर्वम् ॥

ईश्वर सब जगह व्यापक है ॥२४॥

२५.पशून पाहि॥पशुओं की रक्षा करो ॥२५

२६.गां मा हिन्सीः ॥ गौ को मत मार ॥

२७. अविं मा हिंसीः ॥
भेड़ वा बकरी को मत मार ॥२७॥
२८. इमं मा हिंसीर्द्विपादं पशुम् ॥
दो खुर वाले पशु को मत मार ॥२८॥
२९. मांसं नाश्नीयात्॥ कोई मांस न खावे॥
३०. अश्वं मा हिंसीः॥ घोड़े को मत मार॥
३१. कृण्वन्तो विश्वमार्यम् ॥
सारे संसार को आर्य्य बना दो ॥३१॥
३२. अस्तु मयि श्रुतम् ॥ मैं वेदपाठी बनूं ॥
३३. संश्रुतेन गमेमहि॥ हम वेदानुसार चलें॥
३४. मा श्रुतेन विराधिषि ॥
वेद का विरोध मत करो ॥३४॥
३५. सपत्ना अस्मदधरे भवन्तु ॥
शत्रु हमारे आधीन होवें ॥३५॥
३६. अहं भूयासमुत्तमः ॥
मैं सब से उत्तम बनूं ॥३६॥
३७. वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥

हम धन के स्वामी बनें ॥३७॥

३८. अभयं पशुभ्यः॥ पशुओं से अभय हों ३८

३९ सर्वा आशा मम मित्र भवन्तु ॥

दिशाएं और आशाएं मेरी मित्र हों ॥३९॥

४० अक्षर्मा दीव्यः। जूआ मत खेल ॥४०॥

४१ कृषि कृषस्व ॥ खेती-बाड़ी कर ॥४१॥

४२. यतोऽभ्युदयनिश्रेयससिद्धिः स धर्मः ॥ जिस काम से इस लोक तथा परलोक का सुधार हो, वह धर्म है ॥२४॥

४३. ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत ब्रह्मचर्य और तप से विद्वानोंने मृत्यु को जीता

४४ नाऽनाश्रान्ताय श्रीरस्ति ॥

बिना कष्ट धन नहीं मिलता ॥४४॥

४५. इन्द्र इच्चरतः सखा ॥

परिश्रमी की प्रभु सहायता करता है ॥४५॥

४६ नो राजा कृषि तनोतु ॥

हमारा राजा खेती को बढ़ावे ॥४६॥

४७. सहसा विदधीत न कार्य्यम् ॥

जल्दी में काम मत करो ॥४७॥

४८. ब्रह्मचर्य्य प्रतिष्ठायां वीर्यलाभः ॥

ब्रह्मचर्य्य से वीर्य प्राप्त होता है ॥४८॥

४६. वयं भगवन्तः स्याम ॥

हम धनवान बनें ॥४६॥

५०. अन्नं न निन्द्यात् ॥

अन्न की निन्दा न करो ॥५०॥

५१. चरैवेति चरैवेति॥यत्न करो, यत्न करो

५२. सतां सङ्गो हि भेषजम् ॥

सज्जनों का सङ्ग ही औषधि है ॥५२॥

स्वास्थ्य के नियम

जल

१. सदा शीतल जल से स्नान करो।
२. केवल रोग मे कोसे जल से नहाओ।
३ खाने से तत्काल पहिले वा पीछे जल मत पीओ, भोजन मे थोड़ा जल पीओ। यदि भोजन के एक घण्टा पीछे जल पीवें, तो अधिक लाभ होता है।
४. ग्रीष्म काल मे बर्फ़ तथा सोडा मत पीओ, इनसे प्यास तथा शुष्कता बढ़ती है; पाचनशक्ति घट जाती है।
५. विशूचिका (हैज़े) मे कूएं का जल उबाल कर पीओ।
६. प्रतिश्याय (जुकाम) खांसी तथा शीत ऋतु मे सदा उष्ण जल सेवन करो
७. स्वभाव से चाय मत पीओ। यह

भूख, प्यास और नींद कम करती है, अण्डकोषों को निर्बल बनाती तथा मूत्र अधिक लाती है ॥

वायु

१. खुली वायु मे नित्य व्यायाम करो।
२. खुले मैदान और उपवन (बाग़) में जाकर गहरा श्वास लो।
३. तंग गली-कूचों मे रहना छोड़ दो।
४. सोते समय झरोखों (रोशनदानों) को खुला रक्खो।
५. बहुत सरदी में सिर ढांप लो, मगर मुंह खुला रक्खो।
६. रोगी के कमरे में बहुत मत रहो।
७. सदा नाक मे श्वास लिया करो।

भोजन

१. भोजन शनैः शनैः चबा २ कर खाओ।
२. स्वादु भोजन अधिक मत खाओ।

३. अजीर्ण में कुछ भी मत खाओ। कभी-कभी उपवास लाभदायक होगा।

४. क़ब्ज मे मोटे आटे की रोटी तथा साग वा फल खाओ।

५. भोजनशाला स्वच्छ, सुन्दर और खुली होनी चाहिये।

६. उष्ण पदार्थ खाकर तत्काल ठण्डी वस्तु मत खाओ।

७. खटाई और दूध एक साथ मत खाओ।

८. मूली, दही, पनीर इकट्ठे मत खाओ।

९. भोजन से पूर्व तथा पीछे हाथ, जिह्वा दान्त, गला जल से स्वच्छ करो।

१०. भोजन के तत्काल पीछे व्यायाम, स्त्री-भोग, स्नान, चिन्ता, क्रोध करना अत्यन्त हानिकारक है।

११. दो काल ही भोजन करो।

१२. बार-बार खाना आमाशय को निर्बल

करता है, एक बार दूध पी सकते हैं।
१३. अन्न की निन्दा मत करो।
१४. पांव धोकर भोजन खाओ।
१५. मांस मत खाओ।

निद्रा

१. सोने से तीन घण्टे पूर्व भोजन करो।
२. रात को जल, दूध, मिठाई न खाओ।
३. पीठ के बल न सोवो, अपितु पहलू के बल सोया करो, विशेष कर जब कि 'स्वप्नदोष' का रोग हो।
४. सोने से पंद्रह मिनट पहले दिमागी काम छोड़ दो; चिन्ता, क्रोध, निराशा तथा रोग की वार्ता आदि छोड़ दो।
५. सोने से पहले थोड़े से गहरे श्वास खुले स्थान तथा वायु में लेकर 'प्राणायाम' करो तथा कहो कि—
मैं आज से बहुत गहरी नींद सोऊंगा।

सोना मेरा स्वाभाविक अधिकार है।

६. साधारण प्राणायाम तथा तेल की अभ्यंग (मालिश) अच्छी नींद लाती है।

७. सोने से पहले शौच, मूत्रादि अवश्य कर लेना चाहिये।

८ किसी से लड़ाई-झगड़ा न करो।

६. मैले वस्त्र मत पहनो।

१०. रात्रि और दिन के वस्त्र पृथक रखो।

११. सायं प्रातः पढ़ना, खाना आयु को घटाता है।

१२. ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करो।

१३ ज्ञानियों, वृद्धों की सदा सेवा करो।

१४. सर्दियों में सूर्य-सेवन करो।

१५. मन, वचन, कर्म से सत्यस्वभाव बनो।

१६ मल-मूत्र के वेग को मत रोको।

१७. सदा सन्तोषी रहो।

"योग के आसनों" से प्रायः प्रत्येक शारीरिक रोग दूर हो सकता है। विदेशी सब प्रकार के व्यायामों से इन का व्यायाम उत्तम है। शरीर सुन्दर, सुडौल, सुसंगठित और तेजस्वी हो जाता है।

(१) पद्मासन–पांव की नस-नाड़ियों की शुद्धि, ध्यान मे सुगमता, पाचनशक्ति की वृद्धि और पेट के सब दोष दूर हो जाते हैं।

(२) पादहस्तासन–जठराग्नि की वृद्धि, शौच शुद्धि, अजीर्ण नाश। कृमि विकार, तिल्ली-विकार तथा मेदा घट जाता है।
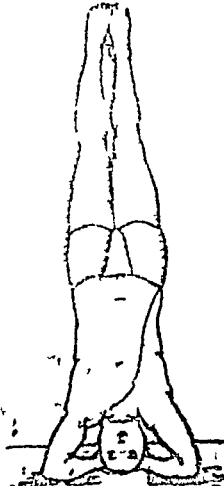
(३) शीर्षासन-रक्तशुद्धि

हाथ पांव के सुन्न का दूर होना, सिर, मुख और छाती का रंग अधिक लाल एवं तेजस्वी, पेट के सब रोग दूर, बुद्धि तथा स्मरण-शक्ति की वृद्धि, वीर्य की ऊर्ध्व-गति, स्वप्नदोष का नाश, पाचनशक्ति की वृद्धि, सिर के श्वेत बाल काले, वृद्धावस्था दूर, नेत्र विकार का नाश, मुख की अरुचि, कण्ठ-दोष, गले पड़ने, छाती की निर्बलता यकृत और सीहा आदि सब रोग इससे दूर होजाते हैं।

(४) पश्चिमोत्तानासन—

यह एक प्रकारसे पादहस्तासन ही है। वही लाभ इससे होते हैं।

महर्षि दयानन्द

महर्षि दयानन्द निःसन्देह इस युग के जीवनदाता हैं। भारतवर्ष मे इस समय जो कुछ जागृति प्रतीत होती है यह सब उन्हीं का पुण्य-प्रताप है। लोग पक्षपात के कारण इस बात को माने या न मानें, परन्तु सत्य तो यह है कि उनके प्रचार से सब कपोलकल्पित मत-मतान्तर अपनी नींव से हिल चुके हैं और प्रत्येक पन्थ यत्न कर रहा है, कि वह अपने माने हुए सिद्धान्तों को ऋषि की बतलाई सच्चाईयों के अनुकूल सिद्ध करे। ऐसी अवस्था मे वह समय दूर नही, जब कि सारे भारतवर्ष के नर-नारी मुक्तकण्ठ से ऋषि को अपना जीवनदाता स्वीकार करके उनके लिये

श्रद्धा और भक्ति प्रकट करेंगे।

ईसाई और यवन आदि कुछ काल के लिये उनको अपना जीवन-दाता स्वीकार करने मे सङ्कोच करें तो करें, परन्तु किसी आर्य्य (हिन्दू) बच्चे को तो क्षण भर के लिये भी सङ्कोच नहीं होना चाहिये क्योंकि ऋषि ने वास्तव मे मृत्यु के निकट पहुँची हुई आर्य्य-जाति को नवजीवन प्रदान किया है। ऋषि से पूर्व किसी हिन्दू मे यह साहस न था कि वह अपने धर्म, अपने वेद शास्त्र और अपने महापुरुषों के लिये अभिमान कर सके क्योंकि वैदिक धर्म के शत्रुओं ने उन सब को दूषित और कलङ्कित कर रक्खा था, इसी कारण सहस्रों आर्य-बालक दिन प्रति-दिन ईसाईयो और यवनो के ग्रास हो रहे

थे। परन्तु, जीवन-दाता ऋषि दयानन्द ने अपने तपोबल से हीन और दीन आर्य्य जाति को नवजीवन प्रदान किया स्वामी जी ने आर्यजाति के सिंह-पुत्रों को, जो अविद्या से भेड़ों से मिले हुए थे, इस सत्य का बोध कराया कि वे सिंह हैं। हिंदू अपने वेदशास्त्र के नाम तक भूल गये थे। स्वामी जी ने उनका पुनः प्रचार करके आर्य्यों को इस योग्य बनाया कि वे अपने धर्म, वेद-शास्त्रों और अपने ऋषि-मुनियों के लिये अभिमान कर सके। उनके ही प्रयत्न का फल है कि आज कोई हिन्दू धर्म के कारण पतित नहीं होता।

ऋषि के जीवन और काम को विस्तार पूर्वक जानने के लिये प्रत्येक आर्य को उनका सम्पूर्ण जीवन-चरित्र पढ़ना

चाहिये। परन्तु यहां उन के सम्बन्ध मे दो चार आवश्यक बातें दी जाती हैं।

जीवन-परिचय

स्वामी दयानन्द का जन्म सन् १८२४ ई० मे गुजरात काठियावाड़ प्रान्त के 'टङ्कारा' नगर मे पण्डित कृष्ण जी त्रिपाठी के घर हुआ था। उनका जन्म नाम मूलशङ्कर था। वह प्रायः 'मूल जी' कहलाया करते थे। तेरह-चौदह वर्ष की आयु मे ही उन्होंने बहुत सी विद्या प्राप्त कर ली थी। उनके मन की प्रवृत्ति खोज की ओर अधिक रहती थी। शिव के उपासक होने के कारण शिवरात्री के दिन पण्डित कृष्ण जी ने अपने पुत्र मूलशङ्कर से भी शिवरात्रि का व्रत रखवाया, और उसे कहा कि शिवालय मे जाग कर शिव को

प्रसन्न करना होगा। मूलशङ्कर ने स्वीकार किया। परन्तु जब आधी रात हो चुकी, वह क्या देखता है कि मन्दिर के पुजारी, उनके पिता और अन्य उपासक सब सो गये। इतने में एक चूहा निकला और पत्थर के शिव पर धरी हुई सब मिठाई चट कर गया। इस घटना को देख बालक मूलशङ्कर चकित रह गया कि क्या यही शिव है, जिसका वर्णन पिता जी इतनी बड़ाई के साथ किया करते थे? क्या इसी शिव की उपासना के लिये रात्रि-जागरण और व्रत रखवाया गया है, जो एक चूहे से भी अपनी रक्षा नहीं कर सकता है? पिता से मन का सन्देह दूर करना चाहा परन्तु सन्तोषजनक उत्तर न मिला। उसी दिन से सच्चे शिव का पता लगाने का

प्रण कर लिया। उसके दो तीन वर्ष पश्चात् उनकी भगिनी और चचा की मृत्यु हो गई इन दृश्यो को देखकर उन्होंने मृत्यु का पता लगाने का सङ्कल्प कर लिया। यह दो घटनायें थीं, जिन्होने मूलशङ्कर के मन पर चोट लगाई, उन्हें घर-बार छोड़ने पर विवश किया और इन्हीं के कारण मूलशंकर ने दयानन्द बन कर इतनी उच्च पदवी को प्राप्त किया, सच्चे शिव की खोज मे मूलशङ्कर ने सारे बन-पर्वत छान मारे, परन्तु मन को शान्ति प्राप्त न हुई। दिन रात इसी चिन्ता मे फिरते २ उन्हे पता चला कि मथुरा मे एक प्रज्ञाचक्षु (अन्धे) दण्डी स्वामी विरजानन्द नामी रहते हैं, वह वेदो के विद्वान् हैं। मूलशङ्कर ने ३६ वर्ष की आयु मे जो उस समय तक संन्यास लेकर दयानन्द बन चुके थे

मथुरा पहुँच कर स्वामी विरजानन्द का द्वार खटखटाया। दण्डी ज के उपदेशों और वेदशास्त्रों के स्वाध्याय से स्वामी दयानन्द के संशय दूर हो गये। जब दण्डी जी ने देखा कि दयानन्द विद्वान् हो गया है, तो एक दिन समावर्तन के लिये नियत किया। दयानन्द के साथ तीन और विद्यार्थी भी पढ़ा करते थे। चारों गुरू जी को दक्षिणा देने के लिये कुछ भेंट लेने गये। दयानन्द को कुछ लौंग मिले, उसने हाथ जोड़ कर गुरू जी को भेंट किये और कहा "महाराज जो कुछ मिला, श्रद्धापूर्वक आप की सेवा में उपस्थित करता हूँ"। स्वामी विरजानन्द बोले "बेटा मुझे इन लौंगों की आवश्यकता नहीं है। मैं कुछ और चाहता हूं, यदि दे सकते हो, तो दो"

दयानन्द ने जो हाथ बांधे खड़ा था कहा, "भगवन्! आज्ञा कीजिये" गुरूजी बोले, "संसार में अन्धकार फैल रहा है, मत-मतान्तरों के पाखण्ड से मनुष्य पीड़ित हो रहे हैं। बेटा! मैंने जो ज्ञान तुम्हें दिया है, उसको फैला कर तिमिर का नाश करो। मैं तुमसे यही दक्षिणा मांगता हूं। क्या तुम में से कोई दक्षिणा देने को कटिबद्ध है"। गुरू जी के यह बचन सुन कर शेष तीन शिष्य तो चुप हो गये, परन्तु दयानन्द कुछ सोच कर बोले :—

"भगवान! तथास्तु, मैं अपना जीवन आप को दक्षिणा में देता हूं। आपकी आज्ञा का पालन करते हुए आयु भर वेदों का प्रचार करूंगा।" स्वामी विरजानन्द ने आशीर्वाद दी और दयानन्द उनसे विदा हुए। चार वर्ष तक लश्कर गवालियर आदि स्थानों

में प्रचार कर हरिद्वार के कुम्भ मेले पर चले गये, और वहां पाखण्ड-खण्डनी पताका गाड़ कर पौराणिक मतों का भली भांति खंडन किया। परिणाम यह हुआ कि पाखण्डी लोग उनके शत्रु बन गये और उन्हों ने स्वामी जी को मार डालने का निश्चय कर लिया। प्रथम बार उन्होंने स्वामी जी की जगह भूल से किसी और मनुष्य को गङ्गा में डुबो दिया। दूसरी बार पान मे विष दिया तीसरी बार कर्णवास में राव कर्णसिंह ने खड्ग लेकर आक्रमण किया परन्तु स्वामी जी के तेज से उनकी खड्ग गिर गई। जब सब आक्रमण निष्फल गये तो पण्डितों ने मिल कर शास्त्रार्थ की ठानी। काशी आदि स्थानों पर शास्त्रार्थ में भी बड़े २ धुरन्धर पण्डित परास्त हुए। अब स्वामी जी की

विद्वत्ता और बल का डंका सारे भारतवर्ष में बज गया और उन्होने भारत के बड़े २ नगरो मे फिर कर प्रचार किया । आर्य्य समाज के सम्बन्ध मे जितनी भी संस्थाएं और जितने भी काम दिखाई देते है, वह उस ऋषि के तपोबल का ही परिणाम है।

मृत्यु से कुछ दिन पूर्व स्वामी जी जोधपुर गये और वहां के राजा को उपदेश दिया। राजा उनका शिष्य बन गया। परन्तु स्वामी जी ने सुना कि राजा ने वेश्या रक्खी हुई है । एक दिन उसी वेश्या की पालकी राजद्वार मे आई। स्वामी जी से रहा न गया और राजद्वार मे ही स्पष्ट कह दिया कि सिंह को कुतियों का संग नहीं करना चाहिये। राजा पर तो इसका अच्छा प्रभाव पड़ा,

परन्तु वह वेश्या स्वामी जी की वैरिनी बन गई और उसने मन्त्रियों को अपने साथ मिलाकर किसी मनुष्य से उनको विष दिला दिया। अनर्थ यह हुआ कि जो डाक्टर इनकी चिकित्सा के लिये नियत हुआ, वह भी इस शत्रु मण्डली से मिला हुआ था, जिससे लाभ के स्थान दिन प्रति-दिन अवस्था बिगड़ती ही गई।

वहां से स्वामी जी उसी अवस्था में पालकी पर अजमेर लाये गये। अब उनको निश्चय हो गया कि उनका अन्तकाल आ पहुँचा है। जिस प्रकार राजा के पास जाने के लिये विशेष तैय्यारी की जाती है, उसी प्रकार जिस दिन स्वामी जी ने अपने परम-पिता प्रभु की गोद में जाना था उस दिन क्षौर (हजामत) कराई, शरीर को स्वच्छ

किया, वेद मन्त्रों का उच्चारण किया और अन्त मे यह कहकर शरीर को छोड़ दिया—

"ईश्वर! तेरी इच्छा पूर्ण हो"

स्वामी जी ने सन् १८८३ ई० मे परलोक-गमन किया। इस समय उनकी अवस्था ५३ वर्ष की थी।

ऋषि दयानन्द के उपकार को मत भूलो। उसके अनुयायी बन जाओ॥

स्वामी जी की विशेषतायें

(१) स्वामी जी वेदो के बड़े भक्त थे। शंकर स्वामी के पश्चात् वेदों का पुनउद्धार स्वामी जी ने ही किया था।

(२) स्वामी जी बालब्रह्मचारी थे, उन्होंने विद्या, बुद्धि और बल से संसार को ब्रह्मचर्य का महत्व दिखला दिया।

(३) स्वामी जी हठी न थे। एक दिन उनके मुख से कोई अशुद्ध शब्द निकल गया; एक साधारण से मनुष्य ने भरी सभा में स्वामी जी को टोक दिया, स्वामी जी ने उसे स्वीकार कर लिया।

(४) स्वामी जी अपनी बात के बड़े पक्के थे, एक दिन किसी हिन्दू ने उनको अपने यहां न ठहराया तो मुसलमान लोग अपने यहां ले गये और उपदेश को कहा। स्वामी जी उनका भी खण्डन करने लगे।

लोग क्या कहते हैं—

महात्मा गान्धी

'महर्षि दयानन्द भारत के आधुनिक ऋषियों मे, सुधारकों मे, श्रेष्ठ पुरुषों में एक थे; उनका ब्रह्मचर्य्य, उनकी विचार स्वतन्त्रता, उनका सब के प्रति प्रेम, उनकी कार्यकुशलता इत्यादि गुण लोगों को मुग्ध करते थे।

माता कस्तूरी बाई

स्वामी दयानन्द केवल आर्यसमाजियों के लिये ही नहीं, वरन् सारी दुनियां भर के लिये पूज्य हैं।'

पंजाब केसरी ला० लाजपतराय

'स्वामी दयानन्द मेरे गुरु हैं, मैंने संसार मे केवल उन्हीं को एक मात्र अपना गुरु माना है।'

राजा श्री दुर्गानारायणसिंह बहादुर

'स्वामी दयानन्द नवीन युग के पथ-प्रदर्शकों में से एक हैं। यदि उन्हें इस गणना में सर्वोच्च स्थान दें तो लेशमात्र भी अतिशयोक्ति न होगी।'

राजा मोतीचन्द सी. आई. ई.

'मैं स्वामी जी को हिन्दू जाति का रक्षक मानता हूँ। उन्होंने गिरती हुई जाति को बचा लिया; लोगों की आंखें खोल दीं।'

रेवरेण्ड टी. डी. सले

'जिसे स्वामी दयानन्द जी ने सच्चाई समझा उसे स्वतन्त्रतापूर्वक स्वीकार किया, जिसे निकृष्ट और मिथ्या समझा उसे निर्भयतापूर्वक सब के सामने रख दिया।'

कवि-सम्राट रवीन्द्रनाथ ठाकुर

'आलस्य और प्राचीन ऐतिहासिक तत्व

के अज्ञान से मुक्त कर भारत को सत्य और पवित्रता की जागृति मे लाने वाले गुरुवर दयानन्द को बार बार प्रणाम है !'

श्री० एन० सी० केलकर

"स्वामी दयानन्द जैसे परमोदार पर संकीर्णता का दोष लगाना भ्रमात्मक और अयुक्त है। मै आर्य्यसमाज को आदरणीय समझ उसे पूज्य दृष्टि से देखता हूँ।"

ला० हरदयाल एम० ए०

'स्वामी दयानन्द ने हिन्दू-युवको के हृदय मे त्याग, परोपकार और देशभक्ति की ज्योति जगा दी। हिन्दू जाति को जो धर्म-शिक्षा इस समय मिली है, उसका सारा श्रेय स्वामी जी को है।'

श्री माधवराव सप्रे

'इसमे सन्देह नही कि महर्षि दयानन्द

की दिव्य-प्रेरणा से भारतवर्ष में आर्य्य-समाज ने बहुत प्रशंसनीय कार्य्य किया है।'

डॉक्टर पी. सी. राय

'आर्य्य-समाज ने हमारी मातृभूमि के उद्धार के लिये बहुत कुछ किया है, अतएव वह हमारी चिर कृतज्ञता का पात्र है।'

श्री पीर मुहम्मद मूनिस

'महर्षि दयानन्द ने अपने विद्याबल, कर्मबल और तपोबल से सारी निर्बलताओं, अकर्मण्यताओं और बुराइयो को दूर कर दिया। हिन्दुओं को सच्चा और वेदानुयायी बनाया।'

सर एडवर्ड डगलस-मैकलेगन
(भूतपूर्व गवर्नर पञ्जाब)

'पञ्जाब मे जितने समाज हैं उन सब मे आर्य्यसमाज सर्वोत्कृष्ट है। इसका सङ्गठन बड़ा उत्तम है। यह राजनैतिक संस्था

अपितु धार्मिक समाज है।'

मौलाना अब्दुल बारी

'स्वामी दयानन्द ने हिन्दू धर्म को हमारे सामने इस भांति रक्खा कि हम उस पर बुद्धि से विचार कर सकें।

पाल रिचर्ड

'स्वामी दयानन्द निस्सन्देह ऋषि थे उन्होने अपने महान् भूत और महान् भविष्य को मिला दिया। वह राष्ट्र को पुनर्जीवित करने वाले थे।'

कर्नल आलकाट

'निःसन्देह स्वामी जी एक महान् पुरुष, संस्कृत के गम्भीर विद्वान्, उत्कृष्ट साहस और स्वावलम्बन से युक्त तथा मनुष्यों के नेता थे।'

महात्मा एण्ड्रयूज

'स्वामी दयानन्द मृत्युपर्यन्त निर्भय रहे

और मृत्यु आई तो उन्होंने मुस्कराते हुए उसका स्वागत किया। वे प्रसन्नतापूर्वक चोटों को सहने, पर किसी दूसरे को चोट पहुँचाने से घृणा करते थे।'

प्रोफेसर मोक्षमूलर

'स्वामी दयानन्द एक विद्वान् थे जो अनेक देशों के धार्मिक साहित्य से पूर्ण अभिज्ञ थे। उनके धर्म नियमों की नींव ईश्वर कृत वेदों पर थी। उनको वेद कण्ठाग्र थे, उन के मन व मस्तिष्क में वेदों ने घर किया हुआ था।'

मेडम ब्लैवटस्की

यह सत्य है कि स्वामी शंकराचार्य के अनन्तर भारत में स्वामी दयानन्द से अधिक संस्कृत का विद्वान, उन से बढ़ कर प्रत्येक बुराई को उखाड़ने वाला, उन

से अधिक कथनशक्ति वाला दार्शनिक उत्पन्न नही हुआ।'

लो० बालगङ्गाधर तिलक।

'स्वामी दयानन्द विचित्र प्रतिभाशाली पुरुष थे, हिन्दू समाज मे विशेष कर उत्तरीय भारत मे समस्त जागृति का श्रेय उनको है।

जस्टिस महादेव गोविन्द रानाडे

'स्वामी दयानन्द पूर्व जन्म के संस्कारी आत्मा थे। आर्य धर्म के तत्त्व को यथार्थ रूप मे संसार के सन्मुख रखने मे स्वामी जी ने कुशाग्र बुद्धि का परिचय दिया है हिन्दू समाज इस विषय मे सदैव उनका कृतज्ञ रहेगा।'

महामना गोपालकृष्ण गोखले।

'वेदों के विषय मे स्वामी जी का मत कितना ग्राह्य है मै कह नही सकता, किन्तु

मैं उनको (Greatest Social Reformer) सब से श्रेष्ठ समाज-सुधारक मानता हूं ।'

शिवकुमार जी शास्त्री महामहोपाध्याय

'इस युग में देववाणी का उद्धार स्वामी जी ने ही किया है—इससे भारत वर्ष में क्रांति हो रही है ।'

योगी अरविन्द घोष

'वेदों के भाष्य के विषय मे हमें विश्वास है कि अन्तिम सांगसंपूर्ण भाष्य चाहे जो हो परन्तु वेद भाष्य की सच्ची चाबी के आविष्कर्ताओं मे श्री स्वामी दयानन्द जी को सब में प्रथम मान लिया जायगा ।'

डा. स्टाक डी ड . . . शिकागो (अमरीका) की धार्मिक प्रदर्शनी में कहा—

'वर्त्तमान समय मे संस्कृत का एक ही बड़ा विद्वान्, साहित्य का पुतला, वेदों के

महत्व को समझने वाला, अत्यन्त प्रबल नैयायिक यदि भारतवर्ष मे हुआ है तो वह महर्षि दयानन्द सरस्वती था।'

ऋषि दयानन्द के उपकार

१. एक ईश्वरोपासना। एक सन्ध्या।
२. वेदों का प्रचार तथा ऊंचा स्थान।
३. स्त्रीजाति का सुधार।
४. विधवाओ का पुनरुद्धार।
५. शुद्धि का द्वार खोल देना।
६. अछूतों का उद्धार।
७. संस्कृत विद्या का प्रचार।
८. आर्य्य-भाषा का प्रचार।
९. वैदिक संस्कारों की एकता।
१०. जातीय-प्रेम तथा सहानुभूति।
११. स्वदेश-प्रेम तथा भक्ति।
१२. देश की स्वतन्त्रता की सदिच्छा।

१३. बाल-विवाह् का रोकना।

१४. उत्साह, उद्योग और आशा का भाव।

१५. प्राचीन आर्य्य-ग्रन्थों का प्रेम।

१६. आर्य्य जाति के सङ्गठन का विचार सब को देना।

आर्य वीर की प्रतिज्ञा

दयानन्द के वीर सैनिक बनेंगे।
दयानन्द का काम पूरा करेंगे॥
उठाये ध्वजा धर्म की हम फिरेंगे।
उसी के लिये हम जियेंगे मरेंगे॥
गुंजायेंगे वेदों के हम गीत गाकर।
दिखायेंगे दुनियां पुरानी बना कर॥
उजाड़ेंगे शहरों को जङ्गल बसाकर।
बितायेंगे जीवन को सच्चा बनाकर॥
उठायेंगे ऋषियों की आवाज को हम।
बनायेंगे फिर स्वर्ग संसार को हम॥

मिटायेंगे सब सम्प्रदायों को, मत को ।
बनायेंगे फिर आर्य सारे जगत् को ॥
वही प्रेम गङ्गा यहां फिर बहेगी ।
जो संसार की ताप-माला हरेगी ॥
कहेगा जगत् फिर से इक स्वर मे सारा ।
वही वृद्ध भारत गुरु है हमारा ॥

भजन

वेदों का डंका आलम मे,
बजवा दिया ऋषि दयानन्द ने ।
हर जगह ओ३म् का झण्डा फिर,
फहरा दिया ऋषि दयानन्द ने ॥१॥
अज्ञान अविद्या की हरसू,
घनघोर घटाए छाईं थी ।
कर नष्ट उन्हे जग मे प्रकाश,
फैला दिया ऋषि दयानन्द ने ॥२॥
सिर पर तूफान बला का था,
नजरों से दूर किनारा था ।

बन कर मल्लाह किनारे पर,
पहुँचा दिया ऋषि दयानन्द ने ॥३॥
घुस गये लुटेरे घर में थे,
सब माल लूट ले जाते थे।
सो शुक्र हाथ सोतों का पकड़,
बिठला दिया ऋषि दयानन्द ने ॥४॥
मक्कारी, दगा फ़रेबों से,
जो माल मुफ़्त का खाते थे।
सब पोल खोल कर दिल उनका,
दहला दिया ऋषि दयानन्द ने ॥५॥
उड़ गये होश मतवालो के,
मैदान छोड़ कर रफ़ू हुए।
हथियार तर्क का निकाल के जब,
चमका दिया ऋषि दयानन्द ने ॥६॥
क़ब्रों मे सर को पटकते थे,
कोई दैरो हरम मे भटकते थे।
दे ज्ञान उन्हे, मुक्ति का मार्ग,

दिखला दिया ऋषि दयानन्द ने ॥७॥
करते थे हमेशा चीख चाख,
तौहीन वेदे अक़दस की जो।
सिर उनका वेदों के आगे,
झुकवा दिया ऋषि दयानन्द ने ॥८॥
सब छोड़ चुके थे धर्म, कर्म,
गौरव, गुमान ऋषि-मुनियों का।
फिर सन्ध्या, हवन, यज्ञ करना,
सिखला दिया ऋषि दयानन्द ने ॥९॥
विद्यालय, गुरुकुल खुलवाये,
क़ायम हर जगह समाज किये।
आदर्श पुरातन शिक्षा का,
बतला दिया ऋषि दयानन्द ने ॥१०॥
बलिदान किया बलि वेदी पर,
जीवन प्रकाश हंसते हंसते।
सच्चे रहबर बन कर सबको,
चेता दिया ऋषि दयानन्द ने ॥११॥

विवाह पर गाने योग्य छन्द

भूमिका

माताओ, बहिनो, देवियो-मैं छन्द सुनाऊं आज
प्रभु का मन में ध्यान धरो सुफल होवें सब काज
मदाक्रोध करदूर दया से हर इकका सत्कारकरो
वैदिकधर्मकीहररीतिको, चिमनकहेस्वीकारकरो

पहला छन्द

पहला छन्द आनन्द-पूर्वक सुनो कान लगाय
वही सतवन्ती नार है जो नाम पति का ध्याय
सिरअपना जो चरण पतिपर प्रेम सहितनिवाय
लोक और परलोक में वही सदा सुख पाय ॥

दूसरा छन्द

छन्द दूसरा कहूँ सुनो, तुम वेदों का प्रचार करो
सत्य-धर्म पर तनमन सबकुछ तुम निसार करो
पढ़ सीताके चरित्रको, अपने शुभ आचार करो
दमयन्ती जैसी बन कर भारत का उद्धारकरो

तीसरा छन्द

छन्द तीसरा कहूँ शान्ति से सुनो जरा मनलाय
करो धर्म की रक्षा बहिनो सतयुग फिरआजाय
मित्रभाव होजाओसभीतुमभान,अपमानमिटाय
कर्म करो ऐसे तुम,भारत बैकुण्ठ बन जाय॥

चौथा छन्द

चौथा छन्द सुनो जरा तुम करे अर्ज यह दास
जो चाहो आयु बढ़े तुम्हारी करो योगाभ्यास
परमेश्वर सम समझपतिको करोइज्जतका पास
कीर्ति तुम्हारी यो बढ़े, ज्यों तीज चन्दप्रकाश

पांचवा छन्द

छन्द पांचवां प्रेमपूर्वक, सुनो मेरी माताओ
भजनसच्चिदानन्द का,हर पल छिन तुमगाओ
पतिव्रता स्त्री ज़रा बन के तुम दिखलाओ।
लाज राखेगा प्रभुतुम्हारीउसी का नाम ध्याओ

छठा छन्द

छटा छन्द सुनने से ही तो आए तुम्हें ज्ञान।
सास ससुर की सेवा कीजो, यही तीर्थ स्नान,
श्रेष्ठ गुरु है पति तुम्हारा यही भाव इक ठान
करे गुरु धारण जो नारी, वह मूर्ख नादान॥

सातवां छन्द

छन्द सातवां कहूँ मैं बहिनो, करो प्रण यह आज
करके वैदिक आचरण हम ले लेंगी स्वराज॥
खद्दर पहनके रख लेवेगी भारत मां की लाज
वार दे अपनी कौमकी खातिर चिमन करेंगे राज

शुद्धि-प्रवेश पत्र

श्रीमद्दयानन्द जन्म-शताब्दी सभा गुरुकुल भूमि वृन्दावन ने जो प्रवेश (शुद्धि) पद्धति विद्वानो से निर्माण कराई है, उसे नीचे लिखते हैं। उसी के अनुसार पवेश (शुद्धि) संस्कार कराना उचित है। जिस जन्म के वैदिक धर्म को न मानने वाले पुरुष वा स्त्री को आर्यसमाज अथवा आर्य-जाति मे प्रवेश करना हो, उसको अपने २ देश मे प्रचलित रीति से क्षौर कराके (यदि स्त्री हो तो क्षौर न करावे) भली-भांति स्नान कराके (स्त्री हो तो सिर सहित स्नान करावें) बहुत स्वच्छ वस्त्र पहना के, वेदी (यज्ञ करने के लिये यजमानादि के बैठने के स्थान) पर आने से पहले सब लोगों

के बीच में उससे नीचे के मन्त्रों का पाठ कराया जाये और अर्थ भी सुना दिये जावें। ये ही मन्त्र बोल कर आचार्य उसके ऊपर कुछ जल के छींटे भी दे दे। वे मन्त्र ये हैं-

पुनन्तु मां देवजनाः,
पुनन्तु मनसा धियः।
पुनन्तु विश्वा भूतानि,
जातवेदः पुनीहि माम् ॥१॥

(देवजनाः) हे सब विद्वान् और श्रेष्ठ पुरुषो! आप (मां) मुझको (पुनन्तु) पवित्र कीजिये अर्थात् समझिये। आप (मनसा) मन के साथ (धियः) बुद्धियों वा कर्मों को भी अब (पुनन्तु) पवित्र समझिये। (विश्वा) सब (भूतानि) प्राणी अर्थात् पुरुष स्त्री आपकी कृपा से मुझे

(पुनन्तु) पवित्र करें अथवा 'समझें (जातवेदः) हे ज्ञानी आचार्य ! आप भी (मां) मुझे इन सब के सामने (पुनीहि) पवित्र कीजिये अर्थात् कह दीजिये, पवित्रता की उपाधि मुझे प्रदान कीजिये ॥१॥

पवित्रेण पुनीहि मां,
शुक्रेण देवदीद्यत्
अग्ने ! क्रत्वा क्रतूंरनु ॥२॥

(देव) हे शुभगुणयुक्त (अग्ने) ज्ञान के प्रकाश-कारक आचार्य ! आप (दीद्यत्) अति दीप्यमान होते हुए (शुक्रेण) शुद्ध (पवित्रेण) पवित्र कर्मसे (मा)मुझे (पुनीहि) पवित्र करें। (क्रतून् अनु) और मेरे यज्ञो को ध्यान मे रख कर (क्रत्वा) यज्ञ कर्म से मुझको पवित्र कीजिये ॥२॥

यत्ते पवित्रमर्चिषि,
अग्ने ! विततमन्तरा ।
ब्रह्म तेन पुनातु मां ॥३॥

(अग्ने) हे ज्ञान से तेजस्वी आचार्य ! (ते) आपको (अर्चिषि) अग्नि की लपट के तुल्य चमत्कार बुद्धि के (अन्तरा) भीतर (यत्) जो (पवित्रं)शुद्ध (ब्रह्म) वेद-ज्ञान (वितत) फैला वा भरा है (तेन) उससे (मां) मुझे (पुनातु) पवित्र कीजिये अर्थात् उसका उपदेश कीजिये, जिससे अपना आचरण वेदानुकूल कर सकूं ॥३॥

पवमानः सो अद्य नः,
पवित्रेण विचर्षणिः ।
यः पोता स पुनातु माम् ॥४॥

(पवमानः) वेद का उपदेश करके पवित्र

करने वाला (विचर्षणि:) किये तथा न किये हुए सबको जानने वाला है। (स:) वह परमात्मा (अद्य)आज(न:)हमे वा मुझे (पवित्रेण) सदा पवित्र कर्म करने से (पुनातु)पवित्र करे। और (य:) जो(पोता) स्वभाव अर्थात् बिना स्वार्थ वाले कारण से ही पवित्र करने वाला है (स:) वह परमात्मा (मा) मुझे पवित्र करे अर्थात् आज मै सब के सामने परमात्मा से यह प्रतिज्ञा करता हूँ कि कभी वेद-विरुद्ध कार्य न करूंगा, जिससे कि अपवित्र होऊं ॥४।

इन मन्त्रों के पाठ के पीछे वेदि मे आसन पर बैठ कर आचार्य 'शन्नो देवी' मन्त्र से उसे आचमन करावे और 'यज्ञोपवीत' पहनावे तथा 'गायत्री-मंत्र' उच्चारण करावे। संक्षेप से अर्थ भी सुना देना उचित है,

फिर यथा-विधि प्रार्थना-मन्त्र, स्वस्ति-वाचन, शान्ति प्रकरण और सामान्य-प्रकरण से सम्पूर्ण हवन को समाप्त करके पूर्णाहुति 'सर्व वै पूर्णं स्वाहा' से पहिले नीचे के मन्त्रों से आहुति देनी चाहिये।

यद्देवा देवहेडनं,
देवासश्चकृमा वयं।
अग्निर्मा तस्मादेनसो
विश्वान्मुञ्चत्वꣳहसः ॥१॥

(देवः देवासः) हे विद्वानो! (वयं) हम ने (यत्) जो (देवहेडनं) विद्वानों का अपराध (चकृमा) किया है। (अग्निः) यह यज्ञ की भौतिक अग्नि वा ज्ञानी आचार्य वा प्रकाश रूप परमात्मा (तस्मात्) उस (पापात्) पाप से (मां) हमें

वा मुझे (मुञ्चतु) छुड़ावे और (विश्वात्) समस्त (अंहसः) पाप से छुड़ावे ॥२॥

यदि दिवा यदि नक्तम्,
एनाꣳसि चकृमा वयम् ।
वायुर्मा तस्मादेनसो,
विश्वान्मुञ्चत्वꣳहसः ॥२॥

(यदि) यदि (दिवा) दिन मे (यदि) यदि (नक्तं) रात मे (वयं) हमने (एनांसि) पाप (चकृमा) किये हैं, तो (वायुः) भौतिक वायु वा अपने ज्ञान से सर्वत्र पहुंच सकने वाला आचार्य वा ईश्वर (आगे पहले की भांति) ॥२॥

यदि जाग्रद् यदि स्वप्ने,
एनाꣳसि चकृमा वयम् ।
सूर्यो मां तस्मादेनसो,

विश्वान्मुञ्चत्व ७ हसः ॥३॥

यदि (जाग्रत) जागने की अवस्था में (यदि) (स्वप्ने) सोने की अवस्था में (वयं) हम (एनांसि चकृम) पाप किये हैं तो (सूर्य) भौतिक सूर्य वा ज्ञान का प्रकाशक आचार्य वा परमात्मा (आगे पहले की भांति) ॥३॥

यद् ग्रामे यदरण्ये,
यत्सभायां यदिन्द्रये ।
यच्छूद्रे यदर्ये यद्,
एनश्चकृमा वयं,
यदेकस्याधिधर्मणि,
तस्यावयजनमसि ॥४॥

(यत्) जो (ग्रामे) गांव में (यत्) (अरण्ये) जंगल में (यत्) (सभायां) सभा में पच्च-

पातादि (यत्) (इन्द्रिये) इन्द्रिय मे परनिन्दा, परनारी (यत्) (शूद्रे) शूद्र के सम्बन्धी (यत्) जो देवो के सम्बन्धी (एनः) पाप को (वयं) हम (चकृमा) कर चुके है। (एकस्य) स्त्री पुरुष दोनों मे से एक भी (अधि धर्मणि) कर्म के सम्बन्धी (तस्य) उस पाप के, हे आचार्य! आप (अवयजनं) नाशक (असि) हैं॥

यदि कोई जन्म से वेद विरोधी न हो किसी कारणवश पतित (वेद विरोधी, ईसाई, यवन आदि मत मे प्रविष्ट) हो गया हो और वैदिक धर्मियो मे प्रविष्ट होना चाहे तो उस से नीचे के मन्त्र का पाठ भी कराया जावे। हमारी सम्मति मे जन्म के पतित से भी इस मन्त्र का पाठ कराना अनुचित नहीं—

यद् विद्वांसो यद् विद्वांस,
एनांसि चकृमा वयं ।
यूयं न स्तस्मान्मुञ्चत,
विश्वेदेवाः सजोषसः ॥१॥

(विद्वांसः, विद्वांसः) हे हे विद्वानो ! (वयं) हमने (यत्, यत्) जो जो (एनांसि) पाप (चकृमा) किये हैं । (यूयं) आप (विश्वे देवाः) सब विद्वान (सजोषसः) प्रीति के साथ (तस्मात्) उस पाप-समुदाय से (नः) हमको (मुञ्चत) पृथक् कर दो ॥१॥

इसके पश्चात् अर्थ-सहित गायत्री का पाठ भी उस से कराना चाहिये। फिर नीचे के मन्त्र से एक आहुति देकर पूर्णाहुति (ओं सर्वं वै पूर्णं ॐ स्वाहा) करा दी जाये।

ओं अग्ने व्रतपते ! व्रतं चरिष्यामि,

तच्छकेयं तन्मे राध्यताम् ।

इदमहमनृतात्सत्यमुपैमि ॥

(व्रतपते, अग्ने) व्रतों के पालक हे विद्वद्गण वा ईश्वर ! मैं (व्रत) प्रण को (चरिष्यामि) पालन करूंगा (तत्) उस को करने मे (शकेयम्) आप की सहायता से समर्थ होऊं (मे) मेरा (तत्) वह (राध्यताम) पूरा हो (अहम्) मै (अनृतात्) झूठ से (इदं सत्यं) इस सत्य को (उपैमि) प्राप्त करता हूँ ॥इति॥

शुद्धि के भजन

पतितों को हमीं उठावेंगे
दलितों को गले लगावेंगे।
कोई अछूत नहीं छोड़ेंगे
आर्य्य सभी बनावेंगे।
परमेश्वर के भक्त बनाके
सब को ओ३म् जपावेंगे॥
छूतछात का भ्रम मिटा के
सब भाई बन जावेंगे।
प्रेम-प्रीत की रीति सिखाके
वैर विरोध हटावेंगे॥
वैदिक धर्मी सारे बन के
अपना ज़ोर बढ़ावेंगे।
दयानन्द स्वामी की आज्ञा
पूरी कर दिखलावेंगे॥

भजन ५

यह वैदिक धर्म हमारा,
है वैदिक धर्म हमारा ॥
हम हैं इस के रक्षक सारे,
इस पर अपना तन मन वारें।
मिलकर अपना व्रत यह धारें,
है यही प्राण अधारा ॥१॥ यह०
मातृभूमि की रक्षा करना,
भक्ति-भाव से भेंटे धरना।
इस के ऊपर जीना मरना,
है कर्तव्य हमारा ॥२॥ यह०
वैर भाव को दूर भगा कर।
जात-पात का भेद भुलाकर ॥
मिल जावो सब गले लगाकर।
फिर बहे प्रेम की धारा ॥३॥ यह०
घर घर वेद मन्त्र सब गावो,

वेदों को फिर से अपनावो।
ऋषि-उपदेश क्रिया में लावो,
फिर बने आर्य जग सारा ॥४॥यह०
सब मित्र ऋषिवर के गुण गावो,
उनके आगे सीस झुकावो,
जिन सब का जन्म सुधारा॥५॥यह०

भजन ६

नाम ज़िन्दों में लिखा जायेंगे मरते मरते।
लाज भारत की बचा जायेंगे मरते मरते ॥
जान पर खेल ही जायेंगे अगर हम तो भी।
सैंकड़ों को ही जिला जायेंगे मरते मरते ॥
रूह तन होंगे जुदा उनको तो होना ही है।
हम तो बिछुड़ोंको मिला जायेंगे मरते मरते॥
वह कोई और है जो रो के रुला के मरते।
हम रकीबों को हंसा जायेंगे मरते मरते ॥
तृष्णा तब आयेंगे जिस वक्त रकीबे नादान।
खून तक अपना पिला जायेंगे मरते मरते॥

आर्यसमाज की विशेष घटनाएं

१७६७-स्वामी विरजानन्द जी का जन्म।

१८२४-स्वामी दयानन्द जी का जन्म टंकारा (मोरवी राज्य मे)।

१८३६-स्वामी विरजानन्द का मथुरा मे वास आरम्भ।

१८३८-स्वामी दयानन्द को बोध-शिवरात्रि

१८४०-स्वामी दयानन्द की बहन का देहान्त

१८४४-स्वामी दयानन्द का गृह-त्याग।

१८४७-मूलशङ्कर का संन्यास धारण कर दयानन्द बनना।

१८५४-महात्मा मुन्शीराम (स्वामी श्रद्धानन्द) का जन्म।

१८५७-स्वामी विरजानन्द की प्रतिज्ञा ऋषिकृत ग्रन्थ पढ़ाने विषयक।

१८५८-पण्डित लेखराम का जन्म।

१८६०-स्वामी दयानन्द की स्वामी विरजानन्द द्वारा शिक्षा।

१८६३-स्वामी दयानन्द का स्वामी विरजानन्द से आज्ञा प्राप्त कर सत्य का प्रचार करना।

१८६४-पण्डित गुरुदत्त का जन्म।

१८६६-स्वामी दयानन्द की स्वामी विरजानन्द से पुनः भेंट।

१८६७-स्वामी दयानन्द का हरिद्वार कुम्भ पर पाखण्ड-खण्डिनी-पताका गाड़ना।

१८६७-स्वामी दयानन्द को प्रथम बार विष दिया गया।

१८६८-स्वामी विरजानन्द जी का देहान्त।

१८६९-स्वामी दयानन्द का काशी-शास्त्रार्थ

१८७२-स्वामी दयानन्द का म०केशवचंद्र सेन वा म. देवेन्द्रनाथ से वार्तालाप।

१८७५-आर्यसमाज की बम्बई में स्थापना
१८७७-आर्यसमाज लाहौर की स्थापना ।
१८७८-आर्यसमाज मेरठ की स्थापना ।
१८८१-पं० लेखराम की दयानन्द से भेंट
१८८३-पं० गुरुदत्त को स्वामी दयानन्द का दर्शन प्राप्त । स्वामी दयानन्द का देहान्त दीपावली के दिन अजमेर मे ।
१८८६-दयानन्द कालेज लाहौर की स्थापना
१८८६-परिडत गुरुदत्त का देहान्त ।
१८६७-पं० लेखराम का एक मुसलमान द्वारा बलिदान ६ मार्च लाहौर मे ।
१६०१-गुरुकुल-वृन्दावन की स्थापना सिकन्दराबाद मे ।
१६०२-गुरुकुल कांगडी की स्थापना ।
१६०५-कांगडा दुर्भिक्ष मे आर्यसमाज की सहायता ।
१६१३-स्वा० दर्शनानन्द का देहान्त

१६२१-मोपला विद्रोह के पश्चात् मालाबार में आर्यसमाज का कार्य-वा कालीकट (मद्रास) में आर्य-समाज की स्थापना।

१६२३-म० रामचन्द्र का जम्मू राज्य में अछूतोद्धार कार्य के कारण बलिदान।

१६२५-मथुरा में दयानन्द शताब्दी उत्सव

१६२६-अजमेर में दयानन्द शताब्दी उत्सव

१६२६-स्वामी श्रद्धानन्द का एक मुसलमान अब्दुलरशीद द्वारा बलिदान २३ दिसम्बर को देहली में।

१६२७-म० राजपाल पर २६ सितंबर को खुदाबख्श का आक्रमण।

१६२७-स्वामी सत्यानन्द जी पर ६ अक्तूबर को अब्दुलअज़ीज़ का लाहौर में आक्रमण।

१६२७-५ नवम्बर को देहली में भारत

के आर्य्यों की कांग्रेस।

१६२६-६ अप्रैल को लाहौर में एक मलेच्छ यवन द्वारा खंजर से २ बजे दोपहर म० राजपाल का बलिदान।

१६३३-अजमेर मे दयानन्द निर्वाण अर्ध शताब्दी मनाई गई।

१६३४-म० म० पं० आर्य्यमुनि का देहान्त मोगा मे।

१६३४-महाराज नाथूराम का बलिदान एक यवन के हाथ से।

१६४०-हैदराबाद रियास्त मे शानदार सफल सत्याग्रह।

हैदराबाद आर्य सत्याग्रह

हैदराबाद दक्षिण (भाग्यनगर) भारतवर्ष में सब से बडी मुस्लिम रियास्त है। हालांकि वहां की जन संख्या मे से केवल

साढ़े दस प्रतिशत ही मुसलमान हैं और अन्य हिन्दू और सिख, तो भी हिन्दुओं पर हमेशा अत्याचार ही होते रहे है। हिन्दुओं ने सब कुछ सहा-परन्तु सहनशीलता की भी हद होती है। जब आर्यों ने देखा कि राजनैतिक अधिकारों की तो बात ही अलग, उनके धार्मिक अधिकारों (जैसे हवन करना, शंख बजाना, ओ३म ध्वज लहराना इत्यादि) पर भी पाबन्दियां लग रही है तो उन्हे लाचार होकर सत्याग्रह करना पड़ा। और सत्याग्रह भी इस शान से हुआ कि सारा संसार चकित रह गया सभी ने मुक्त कंठ से आर्यों के उत्साह और धैर्य की प्रशंसा की। इस सत्याग्रह रूपी यज्ञ मे आर्य हिन्दुओं ने रुपये को पानी की तरह और खून को पसीने की तरह बहाया। इस यज्ञ को अपूव सफलता

मिली।

इस सत्याग्रह में लगभग १००००००)रु० खर्च हुआ और लगभग १४००० सत्याग्रही वीरों ने भाग लिया और २१ आर्य वीरों ने अपने प्राणों की आहुतियां दीं। आर्य भाइयों का कर्तव्य है कि इन शहीदों की याद को चिरस्थाई रखें।

धर्म की वेदी पर बलिदान होने वाले

शहीदे-धर्म म० राजपाल जी

का

जीवन-वृत्तान्त

[ले० महाशय जी का एक मुसलमान मित्र]

—o—

जन्म-स्थान

म० राजपाल जी अमृतसर के एक निर्धन घराने में उत्पन्न हुए। आप के पिता जी सम्भवतः अभियोग-लेखक थे जो कई एक सांसारिक घरेलू कारणों से, आप को आप के छोटे भाई और आपकी माता जी को विना किसी आश्रय के छोड़ कर किसी ओर चल दिये और फिर उनका पता न लगा।

बाल्य-काल

यह एक ऐसी अवस्था थी, जिसमें प्रायः लडके अच्छे नागरिक नहीं बन सकते और अधिकतया संसार की परीक्षाओं में पड कर अयोग्य रह जाते हैं। परन्तु आप ने आरम्भ ही से परिश्रम-शील स्वभाव पाया था।

आप इसी निर्धनता की दशा मे किसी न किसी भांति अपना विद्याध्ययन करते रहे और मिडल तक विद्या प्राप्त की। आपने अपने उत्तरदायित्व को शीघ्र ही अनुभव कर लिया कि घर भर में मैं ही हूं जो अपनी पूज्या माता जी और छोटे भाई की सहायता कर सकता हूँ और उनके व्यय का प्रबन्ध करना मेरा कर्त्तव्य है। इसी चिन्ता में

आप ने लेखन-कला की ओर ध्यान दिया और दिन-रात परिश्रम करके थोड़े दिनों में ही उसमें सफल हो गये और अत्यन्त श्रम से कुछ समय तक लेखन से ही अपने सारे घर का निर्वाह करते रहे।

सब से पहली पुस्तक जो आपने लिखी, वह 'संस्कार-विधि" का सब से पहला उर्दू अनुवाद था और सबसे पहले जिस समाचार-पत्र की आपने लिखाई की, वह "सर्व दुःख निवारण" नामक एक साप्ताहिक वैद्यक का पत्र था जो कि देर से निकलता रहा है।

पहिली सेवा वृत्ति

आप अधिक परिश्रम करने और पर्याप्त भोजन न मिलने के कारण
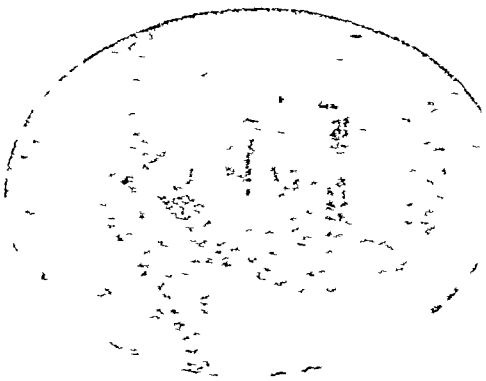
गुरुकुल कांगड़ी के संस्थापक
अमर-शहीद श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी

शहीद प० लेखराम जी
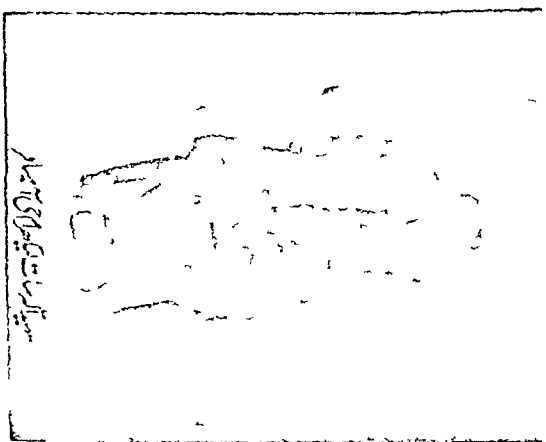
अमृतसरी ने कुछ आक्षेप किये, तो आप ने महात्मा जी के पक्ष में बहुत कुछ "सत्यधर्म प्रचारक" में लिखा। उस समय आप आर्य्य-सामाजिक विचार के थे और आप की धर्मशीलता, श्रम और सदाचार के कारण सब लोग आप को "अपना प्यारा" समझते थे।

जालन्धर में

१९०६ ई० में आप जालन्धर 'सत्य धर्म-प्रचारक' पत्र में लेखक होकर गये। वहां आप पचीस रुपये मासिक वेतन लेते थे। चौधरी ठाकुरदास और ला० बस्तीराम के अधीन आप ने इस प्रकार काम किया कि वह

सदा ही ज़ुकाम से ग्रस्त रहते थे। आप के निर्बल स्वास्थ्य ने आपको लिखाई का काम छोड़ देने के लिये बाधित किया। अकस्मात् हकीम फतहचन्द जी अमृतसर के पास एक स्थान कि था। आप वहां बारह रुपये मासिक पर नौकर हो गये और स्वभाव के अनुसार दिन-रात के परिश्रम और दयानतदारी से हकीम जी को ऐसा प्रसन्न किया कि वह आज तक आपकी प्रशंसा करते हैं।

आप श्रमशील होने के अतिरिक्त गम्भीर भी थे। आप इन दिनों में भी सहायता के विचार से कुछ न कुछ लिखाई (किताबत) का काम करते रहे।

आप महात्मा मुंशीराम जी के भक्त थे। जब उन पर मास्टर आत्माराम

'सत्य-धर्म-प्रचारक' उन दिनों उर्दू में था। परन्तु वेतन बहुत थोड़ा था और आप महात्मा जी से मिलने वाले वेतन पर निर्वाह न कर सकते थे।

लाहौर में

दैवयोग से लाहौर आर्य्यसमाज के उत्सव पर आप की महाशय कृष्ण जी से भेंट हुई। वह उन दिनों साप्ताहिक "प्रकाश" निकालते थे और उनको एक लेखक की आवश्यकता थी। इसलिये आप उनके पास प्रबन्ध-कर्त्ता के रूप में बीस रुपये वेतन पर नौकर होकर लाहौर चले आये।

आप में धर्मशीलता और श्रम करने का मादा स्वभाव से अधिक था इस लिये आप ने थोड़े ही दिनों में महाशय

आप के काम से बहुत प्रसन्न हुए। इसके अतिरिक्त आप का मेलजोल बड़ों से बहुत अच्छा था। आप ने हंस मुख और प्रसन्न-शील प्रकृति पाई थी, और सदा प्रसन्न-वदन और पुलकित-तनु रहा करते थे। उन दिनो आपका आर्य्य-समाजी लोगों से और भी मेल-जोल बढ़ गया। महात्मा मुन्शीराम जी के अधीन होने के कारण आपको प्रायः लोग भलीभांति जानने लगे। आप उन दिनों बहुत सादा रहते थे और समय मिलने पर थोड़ा बहुत लिखाई (किताबत) का काम करते थे। और इस थोड़े वेतन मे से बहुत थोड़ा धन अपने निर्वाह के लिये रख कर शेष माता और भाई के निर्वाह के लिये अमृतसर भेज दिया करते थे।

रुपये के लगभग वेतन मिलने लगा तो
भी आप पर घर के व्यय का अधिक
बोझ था और प्रायः थोड़ी आय के
होने से चिन्तित रहते थे।

सहानुभूति

आप ऐसा सहृदय हृदय रखते थे
कि थोड़ी आय होने पर भी अपनी
मासी जी को भी सहायता देते रहे और
वह भी प्रायः आप ही के पास रहती
थीं। इसके अतिरिक्त जो भी कोई
अपना पराया आपके पास आता आप
अपनी मीठी वाणी से और सब भांति
से उस का सत्कार करते और उसे
सदा के लिये भक्त बना लेते थे।

१९१९ ई० मे जब हिन्दू-मुसलिम
मेल था और उन्हीं दिनों में म० कृष्ण

कृष्ण को प्रसन्न कर लिया।

आप इतने परिश्रमी और सरल-स्वभाव थे कि कभी-कभी चपड़ासी के अनुपस्थिति अथवा न होने की दशा मे स्वयं ही प्रेस से फार्मादि भी ले आया करते थे और कार्यालय मे भी रहते हुए दिन-रात "प्रकाश" की उन्नति मे तत्पर रहते थे। और प्रकाश के काम के अतिरिक्त "प्रकाश-एजन्सी" के पुस्तकालय से पुस्तके भी बाहर भेजने का काम करते थे। आप समय-समय पर अपने हाथ से पार्सल भी बनाया करते थे।

विवाह

१९११ ई० मे आपका विवाह हुआ। तत्पश्चात आप के उत्तरदायित्व बढ़ गये। कार्यालय से आप को चालीस

पुस्तकालय

आवश्यकताओं के बढ़ जाने के कारण आपने निश्चय किया कि सारा दिन कार्यालय में काम करने के अतिरिक्त रात्रि के समय कुछ पुस्तकों का काम किया जावे। श्रम और धर्म में बरकत होती है। ईश्वर ने आपको उत्साह दिया और आप ने सब से पहले दो पुस्तकें छपवाईं "प्राचीन-सभ्यता" और स्वामी सत्यानन्द जी महाराज की "सत्योपदेश-माला।"

पहले-पहल तो आप को बहुत श्रम करना पड़ा। प्रतिश्याय (जुकाम) ने अब तक आप का पीछा न छोड़ा। परन्तु आप ने भी यत्न को हाथ से न जाने दिया जिसके कारण आप का काम

जी जब राजनैतिक अपराधी समझे जाकर "मार्शल लॉ" के न्यायालय से कारागार मे डाल दिये गये, तो आपने उनकी अनुपस्थिति मे "प्रकाश" को डगमगाने नहीं दिया, अपितु उनकी अनुपस्थिति मे इसको उसी भांति जारी रखा।

आपके श्रम से 'प्रकाश' की प्रर्याप्त उन्नति हुई और आपकी सहायता के लिये एक और लेखक की आवश्यकता समझी गई और आपका वेतन भी कुछ बढ़ा दिया गया, जिस पर आप अपनी माता जी और छोटे भाई को भी लाहौर ले आये और यहीं रहना प्रारम्भ कर दिया।

——

देखते थे। उन की दृष्टि सदा झुक जाती थी। स्त्री जाति के लिये आपके हृदय में प्रेम था। आप ने स्त्री-जाति के उपकारार्थ कई एक नवीन उत्तम पुस्तकें छपवाईं। इसलिये आप "सरस्वती" के उपासक थे।

कुछ काम आरम्भ हो जाने के पश्चात् आप ने पुस्तकालय के काम को अपनी धर्म शीलता और कार्य्य-कुशलता से इतनी उन्नति दी कि लाहौर मे अब आपके जोड़ का कोई पुस्तक-विक्रेता न था।

लेन-देन

आप लेन-देन के विषय में ऐसे शुद्ध थे कि आपका कभी किसी से लेन-देन के विषय मे झगड़ा न हुआ।

कुछ कुछ चल निकला, और आप ने आर्य "पुस्तकालय व सरस्वती-आश्रम" के नाम से एक पुस्तकालय स्थापित कर दिया।

पुस्तकालय का नाम 'सरस्वती-आश्रम' क्यों ?

पुस्तकालय का नाम "सरस्वती-आश्रम" क्यों रखा! इस का भी एक विशेष कारण था।

एक तो आप की पतिव्रता, पति-परायणा और पति-भक्ता धर्मपत्नी का शुभ नाम "सरस्वती देवी" था।

दूसरे, महाशय जी स्वयं "सदाचार" के पक्के पक्षपाती थे। नरनारी को सदा बहन तथा माता की दृष्टि से

सहायता का इच्छुक होता था, तो
आप हर्ष से उसकी सहायता
करते थे।

निर्धनता और निःसहाय की अव-
स्था से किस प्रकार एक पुरुष
सांसारिक ऐश्वर्य और धन सम्पत्ति
को प्राप्त कर सकता है, इसके आप
जीवित उदाहरण थे। धन और यश
आपके पांव चूमते थे।

आपने जो इतनी उन्नति की
इसका रहस्य आपकी सराहणीय
कार्यकुशलता और दयानतदारी मे था।

आपको प्रायः सब प्रकार के विषयों
पर नई नई पुस्तकें लिखवाने और उन्हें
सुन्दर छपवाने का शौक था। कई
प्रकार की विद्या सम्बन्धी, राजनैतिक
और धार्मिक पुस्तकें आपने प्रकाशित

और जिन-जिन से आपका व्यवहार हुआ, वे सब आप की मुक्त-कण्ठ से सराहना करते थे। सैंकड़ों और सहस्रों के लेन देन मे आपका एक पत्र पर्याप्त था। प्रैसों का आप मे विशेष विश्वास था। आप का काम सभी प्रसन्नता से छापते थे। पत्र विक्रेता अर्थात् काग़ज़ी सहस्रों का माल संकेत पर देने के लिये तत्पर रहते थे।

अपने कर्मचारियो से उन का व्यवहार बहुत अच्छा था। जिसको एक बार नौकर रख लिया, उस को निकालने का नाम न लेते थे।

प्रत्येक की आवश्यकता के समय मदद के लिये तय्यार रहते थे। अपने सेवकों के अतिरिक्त भी यदि कोई पुरुष उन से किसी प्रकार की

या; आप बच गये। परन्तु यह मूर्ख मतान्ध लोग कब सहन कर सकते थे कि आप देश, धर्म और जाति की सेवा कर सकें। ६ अप्रैल १६२६ को दो बजे दिन के इलमदीन नामक तरखान मुसलमान ने आप पर दुकान के अन्दर बैठे हुए पर आक्रमण किया। छुरा ऐसी तेज़ी और बल से छाती पर मारा कि तत्क्षण प्राण-पखेरू शरीर से उड़ गये और आप सदा के लिये हम से वियुक्त हो गये।

महाशय राजपाल जी ने धर्म पर अपने प्राणों की बलि दे दी। उन्होंने सत्य का बलिदान करने की अपेक्षा अपना बलिदान किया। महाशय जी अमर शहीद हैं और शहीद का खून कभी व्यर्थ नहीं जाता। धर्मवीरों के

कीं। नित्य नये पुस्तक जनता को
भेंट करके देश-सेवा करते रहे।
परन्तु, ईश्वर-इच्छा कुछ और ही थी।
"रंगीला रसूल" नामक एक पुस्तक
छापने पर यवन जाति का पारा ऊपर
चढ गया। भारत सरकार ने अभि-
योग चलाया। उसमे आप बरी हो
गये। पर मतान्ध मुसलमान आपका
जीवन लेने पर उतारू हो गये थे। दिन
रात आप पर वार करने की ताक मे रहते
थे। २६ सितम्बर १६२७ को खुदाबख्श
नामक एक मुसलमान ने आप पर वार
किया। छुरे से छः घाव किये, परन्तु
ईश्वर ने जान बचा ली। ६ अक्टूबर
१६२७ को इसी दुकान पर "अब्दुल
अजीज" मे हमला किया। वह भूल से
स्वामी सत्यानन्द जी महाराज पर भी

है—यहां से वैदिक धर्म सम्बन्धी सैंकड़ों पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। इनके अतिरिक्त अन्य सभी आर्य सामाजिक पुस्तकें, चाहे वे कहीं की भी छपी हों, यहां से मिल सकतीं हैं।

स्वर्गीय महात्मा हंसराज जी की सम्मति—

महाशय राजपाल जी ने धर्म पर अपने प्राणों की बलि दे दी। उन्होंने सत्साहित्य के प्रकाशन और प्रचार का जो काम 'आर्य पुस्तकालय' के नाम से किया उसे कभी भुलाया नहीं जा सकता। शहीदे-धर्म महाशय राजपाल जी का स्थापित किया हुआ 'आर्य पुस्तकालय' आर्यों का अपना पुस्तकालय है! उसे

ख़ून से सींचा हुआ वैदिक-धर्म रूपी वृक्ष दिन प्रति-दिन उन्नति कर रहा है। विधर्मियों का यह समझना भूल है कि महाशय राजपाल जी के स्वर्गारोहण के बाद आर्य समाज के साहित्य का प्रकाशन रुक जाएगा। उन्हें यह समझ लेना चाहिए कि उनके बाद उनका स्थापित किया हुआ—

आर्य पुस्तकालय, अनारकली, लाहौर

पहिले की तरह ही अब भी वैदिक धर्म-सम्बन्धी, उच्च-कोटि के विद्वानों की अनेकानेक पुस्तकें प्रकाशित कर रहा है ताकि वेदों का सन्देश संसार के कोने२ में पहुंच जाए। 'आर्य पुस्तकालय' आर्य समाज का सब से बडा पुस्तकालय

दैनिक "प्रताप" के सञ्चालक महाशय कृष्ण जी (प्रधान, आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाब) लिखते हैं

महाशय राजपाल जी का बलिदान सोने पर सुहागा है। आर्य जनता उनके 'आर्य पुस्तकालय तथा सरस्वती आश्रम' को कभी न भुलाए—और, मेरा विश्वास है कि नहीं भुलाएगी।

अब नीचे महाशय राजपाल ऐण्ड संज़ आर्य पुस्तकालय, अनारकली, लाहौर की प्रकाशित कुछ उत्तम पुस्तकों का परिचय देते हैं जिससे स्वाध्यायशील सज्जनों को पुस्तकें मंगाने में सुविधा रहे-

भक्ति-दर्पण

सभी हिन्दुओं को पूर्ण सहयोग देना चाहिये।

श्री महात्मा नारायण स्वामी जी की शुभ कामना—

मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि 'आर्य पुस्तकालय' स्वर्गीय महाशय राजपाल जी के बाद उन्हीं के चरण-चिन्हों पर चल कर आर्य-समाज की सेवा कर रहा है......मैं हृदय से उसकी सफलता चाहता हूँ।

त्मा का क्या सम्बन्ध है और उपासना की सच्ची विधि क्या है? मोक्ष अथवा मुक्ति क्या है और वह कैसे मिल सकती है? इसी तरह इस उपनिषद् में और भी कई महत्वपूर्ण विषयों पर प्रकाश डाला गया है, जिन्हें समझने के लिये जिज्ञासु प्रभु-भक्तों को बहुत इच्छा रहती है। सब से मुख्य विशेषता इस उपनिषद् की यह है कि यह अन्य सभी उपनिषदों से सरल है। प्रायः सभी कठिन स्थलों पर सरल व रोचक दृष्टान्त अथवा प्रश्न उत्तर के रूप में संवाद देकर गूढ़ विषयों को भी सरल बना दिया है।

× × ×

इस टीका में मंत्रों का अन्वय, शब्दार्थ भावार्थ देकर श्री नारायण स्वामी जी ने इतनी सरल व हृदयग्राही व्याख्या की है

हैदराबाद सत्याग्रह के प्रथम डिक्टेटर

श्री नारायण स्वामी जी

की सर्वोत्कृष्ट रचना

—छान्दोग्य-उपनिषद्—

हैदराबाद सत्याग्रह में श्री नारायण स्वामी जी ने जब पहिले जत्थे का नेतृत्व किया तो उन्हें ६½ मास गुलबर्गा जेल में रहने का अवसर मिला, तभी उन्होंने इस एकान्त मे एकाग्र चित्त से छान्दोग्य उपनिषद् की सरल टीका लिखी जो अब सुन्दर रूप मे छप कर तैयार है।

छान्दोग्य उपनिषद् सब उपनिषदों में श्रेष्ठ मानी जाती है क्योंकि इसका मुख्य विषय उपासना है। इसमे विस्तार से बतलाया गया है कि आत्मा और परमा-

कि पाठक अवश्य इसकी प्रशंसा करेंगे।

दैनिक स्वाध्याय और कथा रूप में पाठ करने के लिये यह टीका सर्वथा उपयुक्त है।

एक बार अवश्य इस ग्रन्थ-रत्न को पढ़ देखें, आप प्रतिदिन इसका स्वाध्याय करना पसन्द करेंगे।

पृष्ठ संख्या लगभग ५००—कपड़े की पक्की जिल्द सहित मूल्य केवल सवा दो रुपया—एक पुस्तक मंगाने के लिये २।।) का मनिआर्डर भेज दें।

शहीदे-धर्म महाशय राजपाल एंड संज,
संचालक—
आर्य-पुस्तकालय व सरस्वती आश्रम,
अनारकली, लाहौर।

संस्कृत स्वयं शिक्षक

लेखक—वेदों के प्रसिद्ध विद्वान् श्रीपाद दामोदर सातवलेकर जी

पुस्तक का नाम ही बतला रहा है कि इस मे क्या कुछ है। इस के पढ़ने से हिन्दी जानने वाला बिना किसी पण्डित की सहायता के घर बैठे संस्कृत भाषा का ज्ञान पैदा कर सकता है, "सस्कृत-स्वयं-शिक्षक" की शैली की विशेषता इसी एक बात से सिद्ध होती है कि इसके प्रथम भाग के पढ़ने से कइयों की योग्यता संस्कृत में बातचीत करने तथा पत्र लिखने तक पहुँच चुकी है। श्री सातव-लेकर जी संस्कृत के प्रसिद्ध विद्वान् हैं। आप ने वेदों का भी भाष्य किया है।

[illegible]-दर्पण

[illegible] आदि स्रोत

इस पुस्तक में जिन्दावस्ता, बाइबल क़ुरान तथा अन्य विविध मत-मतान्तरों का भली प्रकार उल्लेख कर दिखाया है कि वैदिक धर्म ही समस्त धर्मों का आदि स्रोत है। योग्य लेखक ने संसार के विभिन्न मतों की परस्पर तुलना की है, जिससे सर्व साधारण अच्छी तरह लाभ प्राप्त कर सकते हैं। विद्यार्थियों, अध्यापकों एवं उपदेशकों के लिये यह पुस्तक अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगी। ऐसी पुस्तक का प्रत्येक आर्य भाई के पास रहना आवश्यक है जिस से इसका अध्ययन कर विपक्षियो को मुंहतोड़ उत्तर दे सकें। पुस्तक सर्वांग सुन्दर है। द्वितीय संस्करण अभी छपा है। ३०० पृष्ठ की सजिल्द पुस्तक का मूल्य १) लागत मात्र ही है।

इस पुस्तक में आप ने बड़ी ही सरल और वैज्ञानिक विधि से संस्कृत सिखाने की सफल चेष्टा की है। हमारा दावा है कि आप एक बार इन तीनों भागों को ध्यान से पढ़ जावे तो निश्चय आप संस्कृत लिख तथा आसानी से बोल सकेंगे। इस पुस्तक की पञ्जाब टेक्सट बुक कमेटी, महाराज साहब बड़ौदा, प्रिंसिपल सिन्ध नैशनल कालेज और कई स्कूल इन्सपेक्टरों ने जोरदार सिफारिश की है। महात्मा गांधी जी ने इस पुस्तक की शैली को बहुत पसन्द किया है। पुस्तक तीन भागों मे विभक्त है। तीनों भागो के छः और सात-सात संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। प्रत्येक भाग का मूल्य सवा रुपया